शीलव्रतेष्वनिचार भावना का सयुक्तिक विवेचन

- डॉ. आशीष जैन आचार्य शाहगढ़ सागर
(राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त)
महामंत्री - प्राकृत भाषा विकास फाउण्डेशन
संयुक्त मंत्री - अ.भा. दि. जैन शास्त्रिपरिषद्

जीवन में नैतिकता होना अत्यावश्यक है। नैतिक जीवन ही आनंद और प्रसन्नता का कारण है। जिनका जीवन नैतिक नहीं है, वे न तो स्वयं प्रसन्न हैं और न ही अन्य को प्रसन्नता दे पा रहे हैं। नैतिक जीवन की परिधि में वे सारे गुण आते हैं, जिनसे निर्बाध रूप से दूसरे के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न न लगाया जाए। दूसरे के जीवन को घात न पहुँचाया जाए। जैन दर्शन ने नैतिक गुणों को शानदार ढंग से प्रस्तुत किया है। जैन दर्शन कहता है – वह हर एक व्यक्ति नैतिक हो सकता है जो पंच पाप-हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह से अपने आपको बचाता है। इन पापों से बचने और बचाने के लिए आचार्यों ने दो मार्ग कहे हैं – मुनि मार्ग और श्रावक मार्ग। मुनिमार्ग में महाव्रत हैं और श्रावक मार्ग में अणुव्रत हैं। जब व्यक्ति सीमाओं में बंधा हुआ होता है और अपने जीवन को सीमित करना चाहता है तो उसे अणुव्रतों की आवश्यकता पड़ती है। ये अणुव्रत अहिंसा, अस्तेय, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रहपरिमाण के रूप में श्रावक पालन करता है। जब इनका महानतम स्वरूप महाव्रतों के रूप में परिलक्षित होता है तब उसमें अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के रूप में दिग्दर्शित होता है। ये नैतिक गुणों की उत्कृष्टता है। महाव्रतों में रंच मात्र भी किसी जीव को नुकसान पहुँचाए बिना अपने कार्य किए जाते हैं। ये नैतिकता का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप है। इससे आगे बढ़ते हैं तो शीलव्रतों

की चर्चा की जाती है जिसमें चार शिक्षाव्रत और तीन गुणव्रत सम्मिलित हैं। इन व्रतों का निरतिचार पूर्वक पालन करने से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है। अर्थात् जीव का कल्याण निश्चित होता है।

यहाँ पर हम जिनेन्द्र भगवान द्वारा कही गयी सोलहकारण भावना के अन्तर्गत शीलव्रतेष्वनतिचार भावना के विषय में चर्चा कर रहे हैं। शील और व्रतों का निर्दोष पालन करना, शीलव्रतेष्वनतिचार या निरतिचार शीलव्रत है। व्रतों तथा शीलों का जो कुछ अंश भंग हो जावे अर्थात् -कुछ दूषण लग जावे उनको अतिचार कहते हैं। महाव्रतों तथा शीलों में अतिचार न लगने देना यानी निर्दोष रूप से शीलव्रतों का पालन करना शीलव्रतेष्वनतिचार भावना है।

पंच पापों का एक देश त्याग करना अणुव्रत है। इन अणुव्रतों की रक्षा के लिये दिग्व्रत (दशों दिशाओं में आने जाने के स्थान की मर्यादा करना) देशव्रत (कुछ समय के लिये कुछ क्षेत्र तक जाने आने की मर्यादा करना), अनर्थ दंडव्रत (जिन कार्यों में व्यर्थ पाप का बंध हो उनका त्याग करना) ये तीन गुणव्रत तथा सामयिक (नियत समय तक पाँचों पापों का त्याग करे आत्मचिंतन करना), प्रोषधोपवास (सप्तमी नवमी को एकाशन, अष्टमी को उपवास तथा त्रयोदशी पूर्णमासी को एकाशन, चतुर्दशी को उपवास करना), भोगोपभेग परिमाण (भोग्य अर्थात् जो पदार्थ एक बार ही भोगने में आ सके, जैसे भोजन आदि। तथा उपभोग्य अर्थात् -जो पदार्थ बार-बार भोगने में आ सकें, जैसे वस्त्र भूषण आदि पदार्थों का नियम करना) और अतिथिसंविभाग (मुनि आदि व्रती त्यागियों को आहार, शास्त्र, औषध आदि दान करना) ये चार शिक्षा व्रत हैं। ये गुणव्रत शिक्षाव्रत मिलकर ७ शील कहलाते हैं। पाँचों अणुव्रतों तथा सातों के जो अतिचार होते हैं उन अतिचारौं को दूर करके निर्दोष रूप से पालन करना गृहस्थों की निरतिचार शीलव्रत भावना है। अहिंसा आदि पाँच अणुव्रतों के तथा तीन गुणव्रतों ४ शिक्षाव्रतों रूप सात शीलों के प्रत्येक के पाँच-पाँच अतिचार होते हैं, उन अतिचारों को दूर करके निर्दोष आचरण करने के साथ दर्शन विशुद्धि भावना हो तो वह भी तीर्थंकर प्रकृति के बंध का कारण हो सकती है।

भावना शब्द का अर्थ – भावना भव नाशनी और भावना भववर्धिनी। भावना और इच्छा ये दोनों शब्द अत्यंत प्रसिद्ध हैं। मंदिर जाने की भावना होती है, तीर्थयात्रा की भावना होती है लेकिन भोजन की इच्छा होती है, लड़ने की इच्छा होती है, घूमने की इच्छा होती है अर्थात् जो भी पारमार्थिक कार्य हैं उनकी भावना होती है और सांसारिक कार्यों की इच्छा होती है। भावना दुर्भावना और सद्भावना रूप दो प्रकार से है। लेकिन भावना शब्द अपने आपमें परिपूर्ण है। जब भी भावना शब्द का अर्थ आयेगा तो सम्यक् अर्थ में ही आयेगा।

भावना ही पुण्य-पाप, राग-वैराग्य, संसार व मोक्ष आदि का कारण है, अतः जीव को सदा कुत्सित भावनाओं का त्याग करके उत्तम भावनाएँ भानी चाहिए। सम्यक् प्रकार से भायी सोलह प्रसिद्ध भावनाएँ व्यक्ति को सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकर पद में भी स्थापित करने को समर्थ हैं।[1] भावना की दार्शनिक परिभाषा देते हुए आचार्य कहते हैं -

वीर्यांतरायक्षायोपशमचारित्रमोहोपशमक्षायोपशमांगोपांगनामलाभापेक्षेणआत्मना भाव्यंते ता इति भावना ।[2]

वीर्यांतराय क्षायोपशम चारित्रमोहोपशम-क्षायोपशम और अंगोपांग नामकर्मोदय की अपेक्षा रखने वाले आत्मा के द्वारा जो भायी जाती हैं-जिनका बार-बार अनुशीलन किया जाता है, वे भावना हैं।

ज्ञातेऽर्थे पुनः पुनश्चिंतनं भावना।[3]

जाने हुए अर्थ को पुनः-पुनः चिंतन करना भावना है।

भावना शब्द के विविध प्रयोग -

- मैत्री, प्रमोद, कारुण्य आदि भावनाएँ।
- पाँच कुत्सित भावनाएं - काम, क्लेश, युद्ध, आसुरी, संमोही।

- सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र की भावनाएँ।
- वैराग्य भावनाएँ ।
- महाव्रत की पाँच भावनाएँ।
- व्रतों की पाँच-पाँच भावनाएँ मुख्यतः साधुओं के लिए और गौणतः श्रावकों के लिए कही गयी हैं।
- परमात्म भावना।

शीलव्रतेष्वनिचार शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ –

शीलव्रतेषु अनतिचारः इति। शीलव्रतों में अतिचार नहीं होना।

शील शब्द का अर्थ और परिभाषा – जिस प्रकार खेत को सुरक्षित रखने के लिए उसके चारों ओर बाढ़ (मेंड़) लगा देते हैं, बाग को सुरक्षित रखने के लिए चारों ओर मिट्टी की चार दीवारी लगा देते हैं इसी तरह व्रतों को सुरक्षित रखने के लिए जो अन्य यम नियम धारण किये जाते हैं उनका नाम शील हैं। पुरुषार्थसिद्ध्यपाय में श्री अमृतचन्द्र सूरि ने लिखा है-

परिधय इव नगराणि व्रतानि किल पालयन्ति शीखानि।

व्रतपालखाय तस्माच्छीलान्यपि पालनीयानि।।[4]

अर्थात- जिस प्रकार नगरों की सुरक्षा करने के लिये नगरों के चारों ओर कोट बनाये जाते हैं, जैसे कि जयपुर आदि अनेक नगरों में अब तक बने हुए हैं, उन बने हुए ऊँचे कोटों से उन नगरों की बाहरी आक्रमणकारियों से रक्षा होती हैं, उसी तरह व्रतों को सुरक्षित रखने के लिये शीलों को भी अवश्य पालना चाहिए।

पाँच अणुव्रतों के जो दिग्व्रत, देशव्रत आदि 3 गुणव्रत और सामयिक आदि ४ शिक्षा व्रत, कुल ७ शील हैं। इन सातों शीलों के भी पृथक-पृथक ५-५ अतिचार होते हैं, उनका विवरण भी तत्वार्थसूत्र, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय आदि ग्रन्थों में उल्लेख है।

शीलव्रत का लक्षण –

व्रतपरिरक्षणार्थं शीलमिति दिग्विरत्यादीनीह शीलग्रहणेन गृह्यंते।[5]

व्रतों की रक्षा करने के लिए शील हैं, इसलिए यहाँ शीलपद के ग्रहण से दिग्विरति आदि लिये जाते हैं।

सीलं विसयविरागो।।[6]

पंचेंद्रिय के विषय से विरक्त होना शील कहलाता है ।

वद परिरक्खणं सीलं णाम ।[7]

व्रतों की रक्षा को शील कहते हैं ।

शीलं व्रतपरिरक्षणमुपैतु शुभयोगवृत्तिमितरहतिम् ।

संज्ञाक्षविरतिरोधौ क्ष्मादियममलात्ययं क्ष्मादींश्च ।172।।[8]

जिसके द्वारा व्रतों की रक्षा की जाय उसको शील कहते हैं ।संज्ञाओं का परिहार और इंद्रियों का निरोध करना चाहिए, तथा उत्तमक्षमादि दस धर्म को धारण करना चाहिए ।172।

शीलव्रत के भेद –

गुणव्रतत्रयं शिक्षाव्रतचतुष्टयं शीलसप्तकमित्युच्यते।दिग्विरतिः देशविरतिः, अनर्थदंडविरतिः सामायिकं, प्रोषधोपवासः उपभोगपरिभोगपरिमाणं अतिथिसंविभागश्चेति।[9]

तीन गुणव्रत व चार शिक्षाव्रतों को शील सप्तक कहते हैं। उनके नाम निम्न है – दिग्विरति, देशविरति, अनर्थदंडविरति, सामायिक, प्रोषधोपवास, उपभोगपरिभोग परिमाण और अतिथि संविभाग व्रत।

शीलव्रतेष्वनतिचार भावना का लक्षण –

अहिंसादिषु व्रतेषु तत्प्रतिपालनार्थेषु च क्रोधवर्जनादिषु शीलेषु निरवद्या वृत्तिः शीलव्रतेष्वनतीचारः।[10]

अहिंसादिक व्रत हैं और इनके पालन करने के लिए क्रोधादिक का त्याग करना शील है। इन दोनों के पालन करने में निर्दोष प्रवृत्ति करना शीलव्रतानतिचार है।

सीलव्वदेसु णिरदिचारदाए चेव तित्थयरणामकम्मं बज्झइ। तं जहा – हिंसालिय-चोज्जब्बंधपरिग्गहेहिंतो विरदी वदं णाम। वदपरिरक्खणं शीलं णाम। सुरावाण-मांसभक्खण-कोह-माण-माया-लोह-हस्स-रइ-सोग-भय-दुगुंछित्थि-पुरिस-णवुंसयवेया-परिच्चागो अदिचारो, एदेसिं विणासो णिरदिचारो संपुण्णदा, तस्स भावो णिरदिचारदा। तीए सीलव्वदेसु णिरदिचारदाए तित्थयरकम्मस्स बंधो होदि।[11]

शील-व्रतों में निरतिचारता से ही तीर्थंकर नामकर्म बाँधा जाता है। वह इस प्रकार से – हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्म और परिग्रह से विरत होने का नाम व्रत है। व्रतों की रक्षा को शील कहते हैं। सुरापान, मांसभक्षण, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद एवं नपुंसक वेद, इनके त्याग न करने का नाम अतिचार और इनके विनाश का नाम निरतिचार या संपूर्णता है, इसके भाव को निरतिचारता कहते हैं। शीलव्रतों में इस निरतिचारता से तीर्थंकर कर्म का बंध होता है।

- तीन गुण व्रत और चार शिक्षाव्रत – यह **शीलव्रत** कहलाता है ।[12]
- तीर्थंकर प्रकृति में कारणभूत सोलह कारण-भावनाओं में तीसरी भावना ।शीलव्रतों को निरतिचार धारण करना **शीलव्रतेष्वनतिचार-भावना** कहलाती है ।[13]
- अहिंसादिषु व्रतेषु तत्प्रतिपालनार्थेषु च क्रोधवर्जनादिषु शीलेषु निरवद्या वृत्तिः शीलव्रतेष्वनतीचारः।

- **अहिंसादिक व्रत हैं और इनके पालन करने के लिए क्रोधादिक का त्याग करना शील है। इन दोनों के** पालन करने में निर्दोष प्रवृत्ति करना शीलव्रतानतिचार है।

शील और व्रतों का निर्दोष पालन करना, 'शीलव्रतेष्वनतीचार' या 'निरतिचार शीलव्रत' है।

क्रोध को शांत करना, मान का दमन करना आदि अंहिंसाव्रत का शील है। छल भय आदि का छोडना सत्यव्रत शील है। शून्य स्थान गुफा आदि में रहना अचैर्यव्रत का शील है। स्त्रियों के चित्र देखने, उनका अंग निरीक्षण, गरिष्ठ भोजन करने आदि का त्याग ब्रह्मचर्यव्रत का शील है। लोभ कषाय का शांत होना, पदार्थों में राग द्वेष छोडना परिग्रहत्याग व्रत का शील है।

व्रतों तथा शीलों का जो कुछ अंश भंग हो जावे अर्थात् कुछ दूषण लग जावे उनको अतिचार कहते हैं। महाव्रतों तथा शीलों में अतिचार न लगने देना अर्थात् निर्दोष रूप से शीलव्रतों का पालन करना शीलव्रतेष्ठवनतीचार भावना है।

पंच पापों का एक देश त्याग करना अणुव्रत है। अणुव्रत के भी अहिंसा, सत्य, अचैर्य, परस्त्रीत्याग रूप ब्रह्मचर्य, परिग्रह परिमाण ये पाँच भेद हैं। इन अणुव्रतों की रक्षा के लिये दिग्व्रत (दशों दिशाओं में जनम तक आने जाने के स्थान की मर्यादा करना) देशव्रत (कुछ समय के लिये कुछ क्षेत्र तक जाने आने की मर्यादा करना), अनर्थ दंडव्रत (जिन कार्यों में व्यर्थ पाप का बंध हो उनका त्याग करना) ये तीन गुणव्रत तथा सामयिक (नियत समय तक पाँचों पापों का त्याग करे आत्मचिंतन करना), प्रोषधोपवास (सप्तमी नवमी को एकाशन, अष्टमी को उपवास तथा त्रयोदशी पूर्णमासी को एकाशन, चतुर्दशी को उपवास करना), भोगोपभेग परिमाण (भोग्य यानी जो पदार्थ एक बार ही भोगने में आ सके, जैसे भोजन आदि। तथा उपभोग्य यानी-जो पदार्थ बार-बार भोगने में आ सकें, जैसे वस्त्र भूषण आदि पदार्थों का नियम करना) और अतिथिसंविभाग (मुनि आदि व्रती त्यागियों को आहार, शास्त्र, औषध आदि दान करना) ये चार शिक्षा व्रत हैं। ये गुणव्रत शिक्षव्रत मिलकर ७ शील कहलाते हैं।

पाँचों अणुव्रतों तथा सातों के जो अतिचार होते हैं उन अतिचारों को दूर करके निर्दोष रूप से पालन करना गृहस्थों की **निरतिचार शीलव्रत भावना** है।

अहिंसा आदि पाँच अणुव्रतों के तथा तीन गुणव्रतों ४ शिक्षाव्रतों रूप सात शीलों के प्रत्येक के पाँच-पाँच अतिचार होते हैं, उन अतिचारों को दूर करके निर्दोष आचरण करने के साथ दर्शन विशुद्धि भावना हो तो वह भी तीर्थंकर प्रकृति के बंध का कारण हो सकती है।

अतिचार – यहाँ अतिचार शब्द के मायने और प्रयोग के संबंध में चर्चा कर रहे हैं –

दर्शनमोहोदयादतिचरणमतिचारः।3। दर्शनमोहोदयात्तत्त्वार्थश्रद्धानादतिचरणमतिचारः अतिक्रम इत्यनर्थांतरम्।[14]

दर्शन मोह के उदय से तत्त्वार्थ श्रद्धान से विचलित होना (सम्यग्दर्शन का) अतिचार है। अतिक्रम भी इसी का नाम है।

सुरावाण-मांसभक्खण-कोह-माण-माया-लोह-हरस-रइ-सोग-भय-दुगुंछित्थि-पुरिस-णवुंसर वेयापरिच्चागो अदिचारो, एदेसिं विणासो णिरदिचारो संपुण्णदा, तस्स भावो णिरदिचारदा।[15]

सुरापान, मांसभक्षण, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद एवं नपुंसक वेद इनके त्याग न करने का नाम अतिचार है और इनके विनाश का नाम निरतिचार या संपूर्णता है। इसके भाव को निरतिचारता कहते हैं।

....प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनम्।[16]

विषयों में वर्तन करने का नाम अतिचार है।

सापेक्षस्य व्रते हि स्यादतिचारोंऽशभंजनम्।

मंत्रतंत्रप्रयोगाद्याः, परेऽप्यूह्यास्तथात्ययाः।।[17]

मैं ग्रहण किये हुए अहिंसा व्रत का भंग नहीं करूँगाऱ ऐसी प्रतिज्ञा करने वाले श्रावक के व्रत का एक अंश भंग होना अर्थात् चाहे अंतरंग व्रत का खंडन होना अथवा बहिरंग व्रत का खंडन होना उस व्रत में अतिचार कहलाता है। इंद्रियों की असावधानी अर्थात् व्रतों में शिथिलता सो अतिचार है।

पंचाणुव्रतनिधियो निरतिक्रमणाःफलन्ति सुरलोकः।

यत्रावधिरष्टगुणा दिव्यशरीरं च लभ्यंते।।र.क.श्रा./63

जो पाँच अणुव्रतों की निधियों को निरतिचार पालता है वह स्वर्ग रूप फलित होता है, जहाँ अष्ट सिद्धियों से सम्पन्न होकर दिव्य शरीर को प्राप्त होता है।

अहिंसाव्रत के अतिचार -

बधबंधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः।[18]

(१) वध - चाबुक, लड़की, आदि से बैल, घोड़े आदि को हांकने आदि के लिये मारना।

(२) बन्ध - रस्सी, सांकल आदि से अपने पालतू जानवर गाय, बैल, घोड़े आदि को बांधना, पिंजडे में तोता, मैना आदि पक्षियों को बंद कर देना।

(3) छेद - कुत्ते, बैल आदि की पूंछ कान आदि काट देना।

(४) अतिभारारोपण - बैल, घोड़ा आदि लद्दू जानवरों पर अधिक बोझ लादकर ढुलाई करना।

(५) अन्नपाननिरोध-गाय, बैल आदि पालतू जानवरों को यथा समय खाना पीना न देना, उनको भूखा प्यासा रखना।

ये पाँच अतिचार अहिंसा अणुव्रत के हैं। अहिंसा व्रती पुरुष को इन अतिचारों से बचना चाहिए।

सत्य के अतिचार –

मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानक्रियान्यासापहारसाकारमन्त्रभेदाः।[19]

(१) मिथ्यापदेश– आत्महित के विरुद्ध मिथ्या उपदेश देना।

(२) रहोभ्याख्यान– स्त्री पुरुषों की कामक्रीड़ा आदि संबंधी रहस्य (गुप्त रखने योग्य) बातों को प्रकट कर देना।

(3) कूटलेख क्रिया – वही खाते, रुक्के आदि गलत बनावटी लिखना।

(४) न्यासापहार – किसी की धरोहर को हड़प जाना, या धरोहर रखने वाले व्यक्ति की विस्मृति, भूल का अनुचित लाभ उठाकर उसे धरोहर को पूरा न लौटाना।

(५) साकारमन्त्रभेद – किसी के मुख आदि शारीरिक चिन्हों से किसी की गुप्त बात जानकर सर्व साधारण में उसे प्रकट कर देना। ये पांच अतिचार सत्यव्रत के हैं। सत्यव्रत धारण करने वाले व्यक्ति को इनसे बचना चाहिए।

अचौर्यव्रत के अतिचार –

स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः।[20]

(१) स्तेनप्रयोग – चोरी करने का ढंग बतलाना।

(२) तदाहृतादान – चोरी का माल सस्ते भाव में ले लेना।

(3) विरुद्धराज्यातिक्रम – राज्य की ओर से लगे हुए मालकर (चुंगी-महसूल), रेल टिकट, आयकर (इन्कम टैक्स), बिक्रीकर (सेल टैक्स) आदि से बचने का अनुचित प्रयत्न करना।

(४) हीनाधिकमानोन्मान- ग्राहकों को देने के लिये कम वनज वाले बाटों से तोलना, कम नापना और माल लेने के लिए अधिक वजनदार बाटों से तोलना, अधिक नापना, डंडी मारना।

(५) प्रतिरुपकव्यवहार- बढिया पदार्थ में घटिया पदार्थ मिलाकर बढिया पदार्थ के भाव से बेचना, दूध में पानी मिलाकर बेचना, घी में वनस्पति तेल मिलाकर बेचना इत्यादि।

ये पाँच अतिचार अचौर्य अणुव्रत के हैं। अचौर्य अणुव्रती को इन अतिचारों से बचना चाहिए।

ब्रह्मचर्य अणुव्रत के अतिचार –

स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङगनिरिक्षणपूर्वरतानुस्मरण वृष्येष्टरसस्वशरीरत्यागाः पंच।[21]

(१) स्त्रीरागकथाश्रवण – स्त्रियों की रागवर्द्धक बातों का कहना या सुनना।

(२) तन्मनोहराङ्गनिरीक्षण – स्त्रियों के मनोहर अंगों को देखना।

(3) पूर्वरतानुस्मरण – पहले समय की कामलीला का स्मरण करना।

(४) वृष्येष्टरस- गरिष्ट काम-उद्दीपक पदार्थ खाना।

(५) स्वशरीरसंस्कारत्याग – अपने शरीर का श्रृंगार करना, ये पाँच अतिचार ब्रह्मचर्य अणुव्रत के हैं। ब्रह्मचर्य व्रत वाले को इनसे बचना चाहिए।

परिग्रह परिमाणव्रत के अतिचार –

क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णघनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमाः।[22]

(१) क्षेत्रवस्तु- जमीन (खेत आदि) तथा मकानों के किये हुए प्रमाण को बढा लेना।

(२) हिरण्यसुवर्ण- सोने चांदी के रखने का प्रमाण का उल्लंघन करना।

(३) धनधान्य– गाय, बैल आदि गोधन तथा अन्न के संग्रह किये हुए प्रमाण का अतिक्रमण करना।

(४) दासी दास– नौकर नौकरानियों को रखने का जो प्रमाण किया हो उसका बढा लेना।

(५) कुप्यप्रमाणातिक्रम– वस्त्र, बर्तन अपने पास रखने की, की हुई मर्यादा को तोड़ देना। ये पाँच अतचार परिग्रह परिमाण व्रत के हैं।

परिग्रह परिमाण अणुव्रत के धारक गृहस्थ को इनसे अपना व्रत सुरक्षित रखना चाहिए।

सात शील के अन्तर्गत 3 गुणव्रत और 4 शिक्षाव्रत हैं। यहाँ पर गुणव्रत की चर्चा करते हैं –

गुणव्रत –

अनुबृंहणाद् गुणानामाख्यायंति गुणव्रतान्यार्याः ।67।[23]

गुणों को बढ़ाने के कारण आचार्यगण इन व्रतों को गुणव्रत कहते हैं।

यद्गुणायोपकारायाणुव्रतानां व्रतानि तत् । गुणव्रतानि।

=ये तीन व्रत अणुव्रतों के उपकार करने वाले हैं, इसलिए इन्हें गुणव्रत कहते हैं।[24]

गुणव्रत के भेद –

जं च दिसावेरमणं अणत्थदंडेहिं जं च वेरमणं।

देसावगासियं पि य गुणव्वयाइं भवे ताइं ।2081।[25]

दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदंडव्रत ये तीन गुणव्रत हैं।

दिग्व्रतमनर्थदंडव्रतं च भोगोपभोगपरिमाणं।

अनुबृंहणाद् गुणानामाख्ययांति गुणव्रतान्यार्याः।।[26]

दिग्व्रत, अनर्थदंडव्रत और भोगोपभोगपरिमाणव्रत ये तीनों गुणव्रत कहे गये हैं।

दिग्देशानर्थदंडेभ्यो विरतिः स्यादणुव्रतम् ।

भोगोपभोगसंख्यानमप्याहुस्तद्गुणव्रतम् ।165।।[27]

दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदंडव्रत ये तीन गुणव्रत हैं। कोई कोई आचार्य भोगोपभोग परिमाण व्रत को भी गुणव्रत कहते हैं। [देशव्रत को शिक्षाव्रतों में शामिल करते हैं] ।165।

दिग्व्रत –

दिग्वलयं परिगणितं कृत्वातोऽहं बहिर्न यास्यामि।

इति संकल्पो दिग्व्रतमामृत्यणुपापविनिवृत्त्यै ।68।

मकराकरसरिदटवीगिरिजनपदयोजनानि मर्यादाः।

प्राहुर्दिशाः दशानां प्रतिसंहारे प्रसिद्धानि ।69।।[28]

मरण पर्यंत सूक्ष्म पापों की विनिवृत्ति के लिए दशों दिशाओं का परिमाण करके इससे बाहर मैं नहीं जाऊँगा इस प्रकार संकल्प करना या निश्चय कर लेना सो **दिग्व्रत** है ।68। दशों दिशाओं के त्याग में प्रसिद्ध-प्रसिद्ध समुद्र, नदी, पर्वत, देश और योजन पर्यंत की मर्यादा कहते हैं ।69।।

पुव्वुत्तर-दक्खिण-पच्छिमासु काऊण जोयणपमाणं।

परदो गमणनियत्तो दिसि विदिसि गुणव्वयं पढमं।।[29]

पूर्व, उत्तर, दक्षिण और पश्चिम दिशाओं में योजनों का प्रमाण करके उससे आगे दिशाओं और विदिशओं में गमन नहीं करना यह **प्रथम दिग्व्रत नाम का गुणव्रत** है ।214।

दिग्व्रत के पाँच अतिचार –

ऊर्ध्वाधस्तिर्गव्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यंतराधानानि B0।[30]

ऊर्ध्वव्यतिक्रम, अधोव्यतिक्रम, तिर्यग्व्यतिक्रम, क्षेत्रवृद्धि औ स्मृत्यंतराधान ये दिग्विरति व्रत के पाँच अतिचार हैं।30।

ऊर्ध्वाधस्तात्तिर्यग्व्यतिपाताः क्षेत्रवृद्धिरवधीनां।

विस्मरणं दिग्विरतेरत्याशाः पंच मंयंते।73।।[31]

अज्ञान व प्रमाद से ऊपर की, नीचे की तथा विदिशाओं की मर्यादा का उल्लंघन करना, क्षेत्र की मर्यादा बढ़ा लेना और की हुई मर्यादाओं को भूल जाना, ये पाँच दिग्व्रत के अतिचार माने गये हैं।

1. ऊर्ध्वव्यतिक्रम – परिमाण से अधिक ऊंचाई के वृक्ष, पर्वतादि पर चढ़ना या हवाईसफर करना।

2. अधोव्यतिक्रम – मर्यादा से अधिक नीचे के भाग कूपादि में उतरना, समुद्रादि में जाना।

3. तिर्यग्व्यतिक्रम – तिर्यक् अर्थात् पूर्वादि आठों दिशाओं में की गई मर्यादा से बाहर जाना, सुरंग, पर्वतादि की गुफाओं में गमन करना।

4. क्षेत्रत्र वृद्धि – लोभ के वशीभूत होकर स्वीकृत मर्यादा का परिमाण बढ़ा लेना या एक दिशा में कम करके दूसरी में ज्यादा कर लेना।

5. स्मृत्यन्तराधान – निश्चित की गई मर्यादा की प्रतिज्ञा को ही भूल जाना, स्मृति का विलुप्त हो जाना।

दिग्व्रत का प्रयोजन व महत्त्व –

अवधेर्वहिरणुपापप्रतिविरतेर्दिग्व्रतानि धारयताम् ।

पंचमहाव्रतपरिणतिमणुव्रतानि प्रपद्यंते।70।

प्रत्याख्यानतनुत्वांमंदतराश्च चरणमोहपरिणामाः।

सत्त्वेन दुरवधारा महाव्रताय प्रकल्प्यते ।71।[32]

मर्यादा से बाहर सूक्ष्म पापों की निवृत्ति (त्याग) होने से दिग्व्रतधारियों के अणुव्रत पंच महाव्रतों की सदृशता को प्राप्त होते हैं।70। प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ के मंद होने से अतिशय मंदरूप चारित्र मोहनीय परिणाम महाव्रत की कल्पना को उत्पन्न करते हैं अर्थात् महाव्रत सरीखे प्रतीत होते हैं। और वे परिणाम बड़े कष्ट से जानने में आने योग्य हैं। अर्थात् वे कषाय परिणाम इतने सूक्ष्म होते हैं कि उनका अस्तित्व भी कठिनता से प्रतीत होता है।71।

अगमनेऽपि तदंतरावस्थितप्राणिवधाभ्यनुज्ञानं प्रसक्तम् अन्यथा वा दिक्परिमाणमनर्थकमिति; तन्न, किं कारणम् । निवृत्त्यर्थत्वात् । कात्स्न्येन निर्वृतिं कर्तुमशक्नुवतः शक्त्या प्राणिवधविरतिं प्रत्यागूर्णस्यात्र प्राणयात्रा भवतुवा मा वा भूत् । सत्यपि प्रयोजनभूयस्त्वे परिमितदिगवधेर्बहिर्नास्कंत्स्यामिति प्रणिधानान्न दोषः। प्रवृद्वेच्छस्य आत्मनस्तस्यां दिशि विना यत्नात् मणिरत्नादिलाभोऽस्तीत्येवम् । अन्येन प्रोत्साहितस्यापि मणिरत्नादिसंप्राप्तितृष्णाप्राकाम्यनिरोधः कथं तंत्रितो भवेदिति दिग्विरतिः श्रेयसी। अहिंसाद्यणुव्रतंधारिणोऽप्यस्य परिमिताद्दिगवधेर्बहिर्मनोवाक्काययोगैः कृतकारितानुमतविकल्पैः हिंसादिसर्वसावद्यनिवृत्तिरिति महाव्रतत्वमवसेयम् ।[33]

प्रश्न– (परिमाणित) दिशाओं के (बाहर) भाग में गमन न करने पर भी स्वीकृत क्षेत्र मर्यादा के कारण पापबंध होता है। इसलिए दिशाओं का परिमाण अनर्थक हो जायेगा ?

उत्तर– ऐसा नहीं है, क्योंकि दिग्विरति का उद्देश्य निवृत्ति प्रधान होने से बाह्य क्षेत्र में हिंसादि की निवृत्ति करने के कारण कोई दोष नहीं है। जो पूर्णरूप से हिंसादि की निवृत्ति करने में असमर्थ है पर उस सकलविरति के प्रति आदरशील है वह श्रावक जीवन निर्वाह हो या न हो, अनेक प्रयोजन होने पर भी स्वीकृत क्षेत्र मर्यादा को नहीं लांघता अतः हिंसा निवृत्ति होने से वह व्रती है। किसी परिग्रही व्यक्ति को 'इस दिशा में अमुक जगह जाने पर बिना प्रयत्न के मणि-मोती आदि उपलब्ध होते हैं,' इस प्रकार

प्रोत्साहित करने पर भी दिग्व्रत के कारण बाहर जाने की और मणि-मोती आदि की सहज प्राप्ति की लालसा का निरोध होने से दिग्व्रत श्रेयस्कर है। अहिंसाणुव्रती भी परिमित दिशाओं से बाहर मन, वचन, काय व कृत, कारित, अनुमोदना सभी प्रकारों के द्वारा हिंसादि सर्व सावद्यों से विरक्त होता है। अतः वहाँ उसके महाव्रत ही माना जाता है।

ततो बहिस्त्रसस्थावरव्यपरोपणनिवृत्तेर्महाव्रतत्वमवसेयम् । तत्र लाभे सत्यपि परिणामस्य निवृत्तेर्लोभनिरासश्च कृतो भवति।[34]

उस (दिग्व्रत में की गयी) मर्यादा के बाहर त्रस और स्थावर हिंसा का त्याग हो जाने से उतने अंश में महाव्रत होता है। और मर्यादा के बाहर उसमें परिणाम न रहने के कारण लोभ का त्याग हो जाता है।

देशव्रत का लक्षण -

ग्रामादीनामवधृतपरिमाणः प्रदेशो देशः। ततोबहिर्निवृत्तिर्देशविरतिव्रतम् ।[35]

ग्रामादिक की निश्चित मर्यादारूप प्रदेश देश कहलाता है। उससे बाहर जाने का त्यागकर देना **देशविरतिव्रत** कहलाता है।

पुव्व-पमाण-कदाणं सव्वदिसीणं पुणो वि संवरणं।

इंदियविसयाण तहा पुणो वि जो कुणदि संवरणं ।।367।

वासादिकयपमाणं दिणे दिणे लोह-काम-समणट्ठं ।।368।।[36]

जो श्रावक लोभ और काम को घटाने के लिए तथा पाप को छोड़ने के लिए वर्ष आदि की अथवा प्रतिदिन की मर्यादा करके, पहले दिग्व्रत में किये हुए दिशाओं के प्रमाण को, भोगोपभोग

परिमाणव्रत में किये हुए इंद्रियों के विषयों के परिमाण को और भी कम करता है **वह देशावकाशिक नाम का शिक्षाव्रत है।**

वयभंग-कारणं होइ जम्मि देसम्मि तत्थ णियमेण।

कीरइ गमणणियत्ती तं जाणा गुणव्वयं विदियं ।215।।[37]

जिस देश में रहते हुए व्रत भंग का कारण उपस्थित हो, उस देश में नियम से जो गमन निवृत्ति की जाती है, उसे दूसरा देशव्रत नाम का गुणव्रत जानना चाहिए।215।

तद्विषयो गतिस्त्यागस्तथा चाशनवर्जनम् ।

मैथुनस्य परित्यागो यद्वा मौनादिधारणम् ।123।।[38]

देशावकाशिक व्रत का विषय गमन करने का त्याग, भोजन करने का त्याग मैथुन करने का त्याग, अथवा मौन धारण करना आदि है।

श्रावक के व्रतों को देशचारित्र कहते हैं।[39]

देशव्रत के पाँच अतिचार -

आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः ।31।[40]

आनयन, प्रेष्यप्रयोग, शब्दानुपात, रूपानुपात और पुद्गलक्षेप ये देशविरतिव्रत के पाँच अतिचार हैं।31।

आनयन -स्वयं मर्यादा में रहते हुए मर्यादा से बाहर की वस्तु को मांगना या किसी को बुलाना।

प्रेष्यप्रयोग - स्वयं मर्यादित क्षेत्र में रहकर स्वयं का कार्य कराने के लिए मर्यादा से बाहर भेज देना।

शब्दानुपात- मर्यादा के बाहर िस्थत मनुष्य को खांसी या कोई शब्द करके अपना अभिप्राय समझा देना।

रूपानुपात - स्वयं मर्यादित क्षेत्र में रहते हुए मर्यादा के बाहर मनुष्य को अपना रूप दिखाकर, हाथ आदि से इशारा करके अपना कार्य सिद्ध करना।

पुद्गलक्षेप - मर्यादा के बाहर कंकर-पत्थर या कोई भी वस्तु फेंककर अपना अभिप्राय समझा देना।

दिग्व्रत व देशव्रत में अंतर -

अयमनयोर्विशेषः—दिग्विरतिः सार्वकालिकी देशविरतिर्यथाशक्ति कालनियमेनेति।[41]

दिग्विरति यावज्जीवन—सर्वकाल के लिए होती है जबकि देशव्रत शक्त्यानुसार नियतकाल के लिए होता है।

देशव्रत का प्रयोजन व महत्त्व -

पूर्ववद्बहिर्महाव्रतत्वं व्यवस्थाप्यम् ।[42]

यहाँ भी पहले के (दिग्व्रत के) समान मर्यादा के बाहर महाव्रत होता है।

सीमांतानां परतः स्थूलेतरपंचपापसंत्यागात् ।

देशावकाशिकेन च महाव्रतानि प्रसाध्यंते ।95।।[43]

सीमाओं के परे स्थूल सूक्ष्मरूप पाँचों पापों का भले प्रकार त्याग हो जाने से देशावकाशिक व्रत के द्वारा भी महाव्रत साधे जाते हैं।95।

अनर्थदण्डव्रत – गुणव्रत के तीन भेदों में तीसरा भेद-बिना किसी प्रयोजन के होने वाले विविध पापारंभों का त्याग । इसके पाँच भेद है—पापोपदेश, अपध्यान, प्रमादाचरित, हिंसादान और अशुभश्रुति (दुःश्रुति) ।[44]

आभ्यंतरं दिगवधेरपार्थिकेभ्यः सपापयोगेभ्यः।

विरमणमनर्थदंडव्रतं विदुर्व्रतधराग्रण्यः।।[45]

दिशाओं की मर्यादा के भीतर-भीतर प्रयोजन रहित पापों के कारणों से विरक्त होने को व्रतधारियों में अग्रगण्य पुरुष **अनर्थदंड व्रत** कहते हैं।

असत्युपकारे पापादानहेतुरनर्थदंडः।[46]

उपकार न होकर जो प्रवृत्ति केवल पाप का कारण है, वह अनर्थदंड है।

प्रयोजनं विना पापादानहेत्वनर्थदंडः।[47]

बिना ही प्रयोजन के जितने पाप लगते हों उन्हें अनर्थदंड कहते हैं।

कज्जं किं पि ण साहदि णिच्चं पावं करेदि जो अत्थो।

सो खलु हवदि अणत्थो पंच-पयारो वि सो विविहो॥[48]

जिससे अपना कुछ प्रयोजन तो सधता नहीं केवल पाप बंधता है उसे अनर्थ कहते हैं।

अय-दंड-पास-विक्कय-कूड-तुलामाण-कूरसत्ताणं।

जं संगहो ण कीरइ तं जाण गुणव्वयं तदियं।।[49]

लोहे के शस्त्र तलवार कुदाली वगैरह के तथा दंड और पाश (जाल) आदि के बेचने का त्याग करना, झूठी तराजु तथा कूट मान आदि के बाँटों को कम नहीं रखना तथा बिल्ली, कुत्ता आदि क्रूर प्राणियों का संग्रह नहीं करना सो यह तीसरा अनर्थदंड त्याग नाम का गुणव्रत जानना चाहिए ॥216॥

पीडा पापोपदेशाद्यैर्देहाद्यर्थाद्विनांगिनाम्।

अनर्थदंडस्तत्त्यागोऽनर्थदंडव्रतं मतम्।।[50]

अपने तथा अपने कुटुंबी जनों के शरीर, वचन तथा मन संबंधी प्रयोजन के बिना, पापोपदेशादिक के द्वारा प्राणियों को पीड़ा नहीं देना, अनर्थदंड का त्याग अनर्थ दंडव्रत माना गया है।

1. अनर्थदंड के भेद

पापोपदेशहिंसादानापध्यानदुःश्रुतीः पंच।

प्राहुः प्रमादचर्यामनर्थदंडानदंडधराः।।[51]

दंड को नहीं धरने वाले गणधरादिक आचार्य-पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति और प्रमादचर्या इन पाँचों को अनर्थदंड कहते हैं।

1. पापोपदेश -

विद्यावाणिज्यमषीकृषिसेवाशिल्पजीविनां पुंसाम्।

पापोपदेशदानं कदाचिदपि नैव वक्तव्यम् ॥142॥[52]

बिना प्रयोजन किसी पुरुष को आजीविका के कारण, विद्या, वाणिज्य, लेखनकला, खेती, नौकरी और शिल्प आदिक नाना प्रकार के काम तथा हुनर करने का उपदेश देना, पापोपदेश अनर्थदंड कहलाता है। पापोपदेश अनर्थदंड के त्याग का नाम ही अनर्थदंडव्रत कहलाता है।

पापोपदेशश्चतुर्विधः-क्लेशवणिज्या, तिर्यग्वणिज्या, वधकोपदेशः, आरंभकोपदेशश्च।[53]

पापोपदेश चार प्रकार का है - क्लेशवणिज्या, तिर्यग्वणिज्या, वधकोपदेशः, आरंभकोपदेश।

तिर्यक्क्लेशवणिज्याहिंसारंभप्रलंभनादीनां।

कथाप्रसंगप्रसवः स्मर्त्तव्यः पाप उपदेशः ॥76॥[54]

तिर्यग्वणिज्या, क्लेशवणिज्या, हिंसा, आरंभ, ठगाई आदि की कथाओं के प्रसंग उठाने को पापोपदेश नाम का अनर्थदंड जानना चाहिए।

क्लेशतिर्यग्वणिज्यावधकारंभादिषु पापसंयुतं वचनं पापोपदेशः। तद्यथा अस्मिन् देशे दासा दास्यश्च सुलभास्तानमुं देशं नीत्वा विक्रये कृते महानर्थ लाभो भवतीति क्लेशवणिज्या। गोमहिष्यादीन् अमुत्र गृहीत्वा अन्यत्र देशे व्यवहारे कृते भूरिवित्तलाभ इति तिर्यग्वणिज्या। वागुरिकसौकरिकशाकुनिकादिभ्यो मृगवराहशकुंतप्रभृतयोऽमुष्मिं देशे संतीति वचनं वधकोपदेशः। आरंभकेभ्यः कृषीवलादिभ्यः क्षित्युदकज्वलनपवनवनस्पत्यारंभोऽनेनोपायेन कर्तव्यः इत्याख्यानमारंभकोपदेशः। इत्येवं प्रकारं पापसंयुतं वचनं पापोपदेशः।[55]

क्लेशवणिज्या, तिर्यग्वणिज्या, वधक तथा आरंभादिकमें पाप संयुक्त वचन पापोपदेश कहलाता है। वह इस प्रकार कि-

1. इस देश में दास-दासी बहुत सुलभ हैं। उनको अमुक देशमें ले जाकर बेचने से महान् अर्थ लाभ होता है। इसे क्लेशवणिज्या कहते हैं।

2. गाय, भैंस आदि पशु अमुक स्थान से ले जाकर अन्यत्र देश में व्यवहार करने से महान् अर्थ लाभ होता है, इसे तिर्यग्वणिज्या कहते हैं।

3. वधक व शिकारी लोगों को यह बताना कि हिरण, सूअर व पक्षी आदि अमुक देशमें अधिक होते हैं, ऐसा वचन वधकोपदेश है।

4. खेती आदि करनेवालों से यह कहना कि पृथ्वी का अथवा जल, अग्नि, पवन, वनस्पति आदि का आरंभ इस उपाय से करना चाहिए। ऐसा कथन आरंभकोपदेश है। इस प्रकार के पाप संयुक्त वचन पापोपदेश नाम का अनर्थदंड है।

जो उवएसो दिज्जदि किसि-पसु-पालण-वणिज्जपमुहेसु। पुरसित्थी-संजोए अणत्थ-दंडोहवे विदिओ।[56]

= कृषि, पशुपालन, व्यापार वगैरह का तथा स्त्री-पुरुष के समागम का जो उपदेश दिया जाता है वह दूसरा अर्थात् पापोपदेश अनर्थदंड है।

पापोपदेशं यद्ववाक्यं, हिंसाकृत्यादिसंश्रयम्।

तज्जीविभ्यो न तं दद्यान्नापि गोष्ठ्यां प्रसज्जयेत् ॥7॥[57]

हिंसा, खेती और व्यापार आदि को विषय करने वाला जो वचन होता है वह पापोपदेश कहलाता है इसलिए अनर्थदंडव्रत का इच्छुक श्रावक हिंसा, खेती और व्यापार आदि से आजीविका करने वाले, व्याध, ठग वगैरह के लिए उस पापोपदेश को नहीं देवें और कथा-वार्तालाप वगैरह में उस पापोपदेश को प्रसंग में नहीं लावें।

2. अपध्यान -

वधबंधच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः।

आध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदः ॥78॥[58]

जिनशासन में चतुर पुरुष, राग से अथवा द्वेष से अन्य की स्त्री आदि के नाश होने, कैद होने, कट जाने आदि के चिंतन करने को अपध्यान या उपध्यान नामा अनर्थदंड कहते हैं।

परेषां जयपराजयवधबंधनांगच्छेदपरस्वहरणादि कथं स्यादिति मनसा चिंतनमपध्यानम्।[59]

दूसरों की जय, पराजय, मारना, बाँधना, अंगों का छेदना, और धन का अपहरण आदि कैसे किया जाये इस प्रकार मन से विचार करना अपध्यान है।

उभयमप्येतदपध्यानमम्।[60]

ये दोनों आर्त व रौद्रध्यान अपध्यान हैं।

परदोसाण वि गहणं परलच्छीणं समीहणं जं च।

परइत्थी अवलोओ परकलहालोयणं पढमं ॥344॥[61]

पर के दोषों का ग्रहण करना, पर की लक्ष्मी को चाहना, परायी स्त्री को ताकना तथा परायी कलह को देखना प्रथम (अपध्यान) अनर्थदंड है।

स्वयं विषयानुभवरहितोऽप्ययंजीवः परकीयविषयानुभवं दृष्टं श्रुतं च मनसि स्मृत्वा यद्विषयाभिलाषं करोति तदपध्यानं भण्यते।[62]

स्वयं विषयों के अनुभव से रहित भी यह जीव अन्य के देखे हुए तथा सुने हुए विषय के अनुभव को मन में स्मरण करके विषयों की इच्छा करता है, उसको अपध्यान कहते हैं।

3. प्रमादचर्या अनर्थदंड –

क्षितिसलिलदहनपवनारंभं विफलं वनस्पतिच्छेदम्।

सरणं सारणमपि च प्रमादाचर्यां प्रभाषंते ॥80॥[63]

बिना प्रयोजन पृथिवी, जल, अग्नि, और पवन के आरंभ करने को, वनस्पति छेदने को, पर्यटन करने को और दूसरों को पर्यटन कराने को भी प्रमादचर्या नामा अनर्थदंड कहते हैं।

प्रयोजनमंतरेण वृक्षादिच्छेदनभूमिकुट्टनसलिलसेचनाद्यवद्यकर्मप्रमादाचरितम्।[64]

बिना प्रयोजन के वृक्षादि का छेदना, भूमि का कूटना, पानी का सींचना आदि पाप कार्य प्रमादाचरित नामका अनर्थदंड है।

भूखननवृक्षमोट्टनशाड्वलदलनांबुसेवनादीनि।

निष्कारण न कुर्याद्दलफलकुसुमोच्चयानपि च।।[65]

बिना प्रयोजन जमीन का खोदना, वृक्षादि को उखाड़ना, दूब आदिक हरी घास को रौंदना या खोदना, पानी खींचना, फल, फूल, पत्रादि का तोड़ना इत्यादिक पाप क्रियाओं का करना प्रमादचर्या अनर्थदंड है।

प्रमादचर्यां विफलक्ष्मानिलाग्न्यंबुभूरुहां।

खातव्याघातविध्यापासेकच्छेदादि नाचरेत् ॥10॥[66]

अनर्थदंड का त्यागी श्रावक पृथिवी के खोदनेरू प किवाड़ वगैरह के द्वारा वायु के प्रतिबंध करने रूप, जलादि से अग्नि को बुझाने रूप, भूमि वगैरह में जल के फेंकने तथा वनस्पति के छेदने आदि रूप प्रमादचर्या को नहीं करे।

4. हिंसादान अनर्थदंड –

परशुकृपाणखनित्रज्वलनायुधश्रृंगश्रृंगलादीनाम्।

वधहेतूनां दानं हिंसादानं ब्रुवंति बुधाः ॥77॥[67]

फरसा, तलवार, खनित्र, अग्नि, आयुध, सींगी, शांकल आदि हिंसा के कारणों के माँगे देने को पंडित जन हिंसादान नामा अनर्थदंड कहते हैं।

विषकंटकशस्त्राग्निरज्जुकशादंडादिहिंसोपकरणप्रदानंहिंसाप्रदानम्।[68]

विष, काँटा, शस्त्र, अग्नि, रस्सी, चाबुक, और लकड़ी आदि हिंसा के उपकरणों का प्रदान करना हिंसाप्रदान नामा अनर्थदंड है।

असिधेनुविषहुताशनलांगलकरवालकार्मुकादीनाम्। वितरणमुपकरणानां हिंसायाः परिहरेद्यंतात्।[69]

असि, धेनु, जहर, अग्नि, हल, करवाल, धनुष आदि अनेक हिंसा के उपकरणों को दूसरों को माँगा देने का त्याग करना, हिंसाप्रदान अनर्थदंड है।

मज्जार-पहुदि-धरणं आउह-लोहादि-विक्कणं जं च।

लक्खा-खलादि-गहणं अणत्थ-दंडो हवे तुरिओ ॥347॥[70]

बिलावादि हिंसक जंतुओं का पालना, लोहे तथा अस्त्र-शस्त्रों का देना-लेना और लाख, विष वगैरह का लेना-देना चौथा अनर्थदंड है।

हिंसादानविषास्त्रादि-हिंसांगस्पर्शनं त्यजेत्।

पाकाद्यर्थं च नाग्न्यादिदाक्षिण्याविषयेऽर्पयेत्।।[71]

विष या हथियार आदि हिंसा के कारणभूत पदार्थों का देना हिंसादान नामक अनर्थदंड व्रत कहलाता है। उस हिंसादान अनर्थदंड को छोड़ देना चाहिए। जिससे अपना व्यवहार है ऐसे पुरुषों से भिन्न पुरुषों के विषय में पाकादि के लिए अग्नि नहीं देवे।

5. दुःश्रुति अनर्थदंड –

आरंभसंगसाहसमिथ्यात्वद्वेषरागमदमदनैः।

चेतः कलुषयतां श्रुतिरवधीनां दुःश्रुतिर्भवति ॥79॥[72]

आरंभ, परिग्रह, दुःसाहस, मिथ्यात्व, द्वेष, राग, गर्व, कामवासना आदि से चित्त को क्लेषित करने वाले शास्त्रों का सुनना-वाँचना सो दुःश्रुति नामा अनर्थदंड है।

हिंसारागादिप्रवर्धनदुष्टकथाश्रवणशिक्षणव्यापृतिरशुभश्रुतिः।[73]

हिंसा और राग आदि को बढ़ाने वाली दुष्ट कथाओं का सुनना और उनकी शिक्षा देना अशुभश्रुति नामका अनर्थदंड है।

रागादिवर्द्धनानां दुष्टकथानामबोधबहुलानाम्।

न कदाचन कुर्वीत श्रवणार्जनशिक्षणादीनि ॥145॥[74]

रागद्वेष आदिक विभाव भावों के बढ़ाने वाली, अज्ञान भाव से भरी हुई दुष्ट कथाओं को सुनना, बनाना, एकत्रित करना, या सीखना आदि का त्याग करने का नाम दुःश्रुति अनर्थदंड व्रत है।

ज सवणं सत्थाणं भंडण-वासियरण-काम-सत्थाणं।

परदोसाणं ज तहा अणत्थ-दंडो हवे चरिमो ।348।।[75]

जिन शास्त्रों या पुस्तकों में गंदे मजाक, वशीकरण, कामभोग वगैरह का वर्णन हो उनका सुनना और परके दोषों की चर्चा वार्ता सुनना पाँचवाँ अनर्थदंड है।

चित्तकालुष्यकृत्काम-हिंसाद्यर्थश्रुतश्रुतिम्।

न दुःश्रुतिमपध्यानं, नार्तरौद्रात्म चान्वियात् ॥9॥[76]

अनर्थदंडव्रत का इच्छुक श्रावक चित्त में कालुष्यता करने वाला जो काम तथा हिंसा आदिक हैं तात्पर्य जिनके ऐसे शास्त्रों के रूप दुःश्रुति नामक अनर्थदंड को नहीं करे और आर्त तथा रौद्र ध्यान स्वरूप अपध्यान नामक अनर्थदंड को नहीं करे।

3. अनर्थदंडव्रत के अतिचार-

कंदर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि।[77]

1. कन्दर्प - हास्ययुक्त अशिष्ट वचन का प्रयोग।

2. कौत्कुच्य - कायकी कुचेष्टा सहित ऐसे वचन का प्रयोग।

3. मौखर्य - बेकार बोलते रहना।

4. असीमक्ष्याधिकरण - प्रयोजन के बिना कोई न कोई तोड़-फोड़ करते रहना या काव्यादिका चिंतवन करते रहना।

5. उपभोगपरिभोग अनर्थक्य - प्रयोजन न होनेपर भी भोग-परिभोग की सामग्री एकत्रित करना या रखना। ये पाँच अनर्थदंड व्रत के अतिचार हैं।

विशेष -

4. भोगपभोग परिमाणव्रत व भोगोपभोग आनर्थक्य नामक अतिचार में अंतर

यावताऽर्थे न उपभोगपरिभोगौ प्रकल्प्येतेतस्य तावानर्थ इत्युच्यते, ततोऽन्यस्याधिक्यमानर्थक्यम् ।6। ...स्यादेतत्-उपभोगपरिभोगव्रतेऽंतर्भवतीति पौनरुक्त्यमासज्यत इति; तन्न किं कारणम्। तदर्थानवधारणात्। इच्छावशात् उपभोगपरिभोगपरिमाणावग्रहः सावद्यप्रत्याख्यानं चेति तदुक्तम्, इह पुनः कल्प्यस्यैव आधिक्यमित्यतिक्रम इत्युच्यते। नंवेवमपितद्व्रतातिचारांतर्भावात् इदं वचनमनर्थकम्। नानर्थकम्; सचित्ताद्यतिक्रमवचनात्।[78]

जिसके जितने उपभोग और परिभोग के पदार्थों से काम चल जाये वह उसके लिए अर्थ है, उससे अधिक पदार्थ रखना उपभोगपरिभोगानर्थक्य है।

प्रश्न – इसका तो उपभोग-परिभोगपरिमाणव्रतमें अंतर्भाव हो जाता है अतः इससे पुनरुक्तता प्राप्त होती है ?

उत्तर – नहीं होती, क्योंकि इसका अर्थ अन्य है। उपभोग-परिभोगपरिमाणव्रत में तो इच्छानुसार प्रमाण किया जाता है और सावद्य का परिहार किया जाता है, पर यहाँ आवश्यकता का विचार है। जो संकल्पित भी है पर यदि आवश्यकता से अधिक है तो अतिचार है।

प्रश्न – तब इसका अंतर्भाव भोगपरिभोग-परिमाणव्रत के अतिचार में हो जाने से यह कथन निरर्थक है ?

उत्तर – निरर्थक नहीं है क्योंकि वहाँ सचित्त संबंध आदि रूप से मर्यादाति क्रम विवक्षित है, अतः इसका वहाँ कथन नहीं किया।

अनर्थदंडव्रत का प्रयोजन –

दिग्देशयोरुत्तरयोश्चोपभोगपरिभोगयोरवधृतपरिमाणयोरनर्थकं चंक्रमणादिविषयोपसेवनं च निष्प्रयोजनं न कर्तव्यमित्यतिरेकनिवृत्तिज्ञापनार्थं मध्येऽनर्थदंडवचनं क्रियते।[79]

पहले कहे गये दिग्व्रत तथा देशव्रत तथा आगे कहे जाने वाले उपभोग-परिभोग परिमाणव्रत में स्वीकृत मर्यादा में भी निरर्थक गमन आदि तथा विषय सेवन आदि नहीं करना चाहिए, इस अतिरेक निवृत्ति की सूचना के लिए बीच में अनर्थदंड विरति का ग्रहण किया है।

अनर्थदंडव्रत का महत्त्व –

एवंविधमपरमपि ज्ञात्वा मुंचत्यनर्थदंडं यः।

तस्यानिशमनवद्यं विजयमहिंसाव्रतं लभते ॥147॥[80]

जो पुरुष इस प्रकार अन्य भी अनर्थदंडों को जानकर उनका त्याग करता है, वह निरंतर निर्दोष अहिंसाव्रत का पालन करता है।

शिक्षाव्रत – मुनिधर्म के अभ्यास में हेतु रूप गृहस्थों के चार व्रत– (1) तीनों समयों में सामायिक करना (2) प्रौषधोपवास करना (3) अतिथि पूजन करना और (4) आयु के अंत में सल्लेखना धारण करना। महापुराण में इन्हें क्रमशः समता, प्रौषधविधि, अतिथिसंग्रह तथा मरण समय में लिया जाने वाला संन्यास नाम दिये गये हैं।[81]

भोगाणं परिसंखा सामाइयमतिहिसंविभागो य। पोसहविधी य सव्वो चदुरो सिक्खाउ बुत्ताओ ।2082।

आसुक्कारे मरणे अव्वोच्छिण्णाए जोविदासाए। णादीहि वा अमुक्को

पच्छिमसल्लेहणमंकासी ।2083।[82]

भोगोपभोग परिमाण, सामायिक, प्रोषधोपवास, अतिथि संविभाग ये चार शिक्षाव्रत हैं।2082। इन व्रतों को पालने वाला गृहस्थ सहसा मरण आने पर जीवित की आशा रहने पर, जिसके बंधुगण ने दीक्षा लेने की सम्मति नहीं दी है ऐसे प्रसंग में सल्लेखना धारण करता है।[83]

देशावकाशिकं वा सामायिकं प्रोषधोपवासो वा।

वैयावृत्यं शिक्षाव्रतानि चत्वारि शिष्टानि ।91।[84]

देशावकाशिक तथा सामायिक, प्रोषधोपवास और वैयावृत्य ये चार शिक्षाव्रत कहे गये हैं।

सामाइयं च पढमं विदियं च तहेव पोसइं भणियं।

तइयं च अतिहिपुज्ज चउत्थ सल्लेहणा अंते।[85]

पहला सामायिक शिक्षाव्रत, दूसरा प्रोषधव्रत, तीसरा अतिथिपूजा और चौथा शिक्षाव्रत अंत समय सल्लेखना है।26।

भोगविरति, परिभोग-निवृत्ति तीसरा अतिथि संविभाग व चौथा सल्लेखना नाम का शिक्षाव्रत होता है।[86]

देशावकाशिक शिक्षाव्रत –

देशावकाशिकं स्यात् कालपरिच्छेदनेन देशस्य ।
प्रत्यहमणुव्रतानां प्रतिसंहारो विशालस्य ॥92 ॥

दिग्व्रत में संकल्पित देश -काल की विस्तृत मर्यादा को उत्तरोत्तर कम करना (घटाना) देशावकाशिक शिक्षाव्रत है। अणुव्रतधारियों ने अपने -अपने दिग्व्रतों में आने -जाने सम्बन्धी जो क्षेत्र निश्चित किया था उस विशाल देश , क्षेत्र, काल आदि की मर्यादा को कुछ समय , कुछ दिनों के लिये या रोजमर्रा ही संकोच / कम कर लेना ही देशावकाशिक नामक शिक्षाव्रत कहलाता है। जैसे किसी गृहस्थ ने नियम कर लिया कि फाल्गुन सुदी अष्टमी से लेकर फाल्गुन सुदी पूर्णिमा तक इन आठ दिनों में , मैं अपने ग्राम को छोड़कर दूसरे अन्य गाँव को नहीं जाऊँगा एवं आज अष्टमी के दिन , मैं चौबीस घंटों के लिए अपना ही मकान छोड़कर बाहर नहीं जाऊँगा बल्कि यहीं पर ठहरकर निराकुलतापूर्वक , शान्तिपूर्वक भगवद् - भजन और ज्ञानाभ्यास करता रहूँगा । यही संकल्प उसका देशावकाशिक नामक देशव्रत हुआ जो कि शिक्षाव्रत कहलाता है ।

सामायिक व्रत का लक्षण -

समता सर्वभूतेषु संयमे शुभभावना।

आर्तरौद्रपरित्यागस्तद्धि सामायिकं व्रतम् ।8।[87]

=सब प्राणियों में समता भाव धारण करना, संयम के विषय में शुभ विचार रखना, तथा आर्त एवं रौद्र ध्यानों का त्याग करना, इसे सामायिक व्रत माना है।8।

2. अवधृत कालपर्यंत सर्व सावद्य निवृत्ति

आसमयमुक्तिमुक्तं पंचाधानामशेषभावेन।

सर्वत्र च सामयिकाः सामायिकं नाम शंसंति।97।

मूर्धरुहमुष्टिवासोबंधं पर्यंकबंधनं चापि।

स्थानमुपवेशनं वा समयं जानंति समयज्ञाः।98।[88]

मन, वचन, काय, तथा कृत कारित अनुमोदना ऐसे नवकोटि से की हुई मर्यादा के भीतर या बाहर भी किसी नियत समय (अंतर्मुहूर्त) पर्यंत पाँचों पापों का त्याग करने को सामायिक कहते हैं।97। ज्ञानी पुरुष चोटी के बाल मुट्ठी व वस्त्र के बाँधने को तथा पर्यंक आसन से या कायोत्सर्ग आसन से सामायिक करने को स्थान व उपवेशन को अथवा सामायिक करने योग्य समय को जानते हैं।98।

सर्वसावद्यनिवृत्तिलक्षणसामायिक।[89]

सर्व सावद्य की निवृत्ति ही है लक्षण जिसका ऐसा सामायिक व्रत (यद्यपि सामायिक की अपेक्षा एक है पर छेदोपस्थापना की अपेक्षा 5 है।

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत – पर्व के दिन में चारों प्रकार के आहार का त्याग करके धर्म ध्यान में दिन व्यतीत करना प्रौषधोपवास कहलाता है, उस दिन आरंभ करने का त्याग होता है । एक दिन में भोजन की दो वेला मानी जाती है । पहले दिन एक वेला, दूसरे दिन दोनों वेलाऔर तीसरे दिन पुनः एक वेला, इस प्रकार चार वेला में भोजन का त्याग होने के कारण उपवास को चतुर्भक्त वेले को षष्टभक्त आदि कहते हैं । व्रत प्रतिमा में प्रोषधोपवास सातिचार होता है, और प्रोषधोपवास प्रतिमा में निरतिचार ।

चतुराहारविसर्जनसुपवासः प्रोषधः सकृद्भुक्तिः ।

स प्रोषधोपवासो यदुपोष्यारंभमाचरति ।109।[90]

चार प्रकार के आहार का त्याग करना उपवास है । एक बार भोजन करना प्रोषध है । जो धारणे-पारने के दिन प्रोषधसहित गृहारंभादि को छोड़कर उपवास करके आरंभ करता है, वह प्रोषधोपवास है ।

प्रोषधशब्दः पर्व पर्यायवाची ।... प्रोषधे उपवासः प्रोषधोपवासः ।[91]

प्रोषधका अर्थ पर्व है ।... पर्व के दिन में जो उपवास किया जाता है उसे प्रोषधोपवास कहते हैं ।

ण्हाण-विलेवण-भूसण-इत्थी-संसग्ग-गंधधूवादी ।

जो परिहरेदी णाणी वेरग्गाभूसणं किच्चा ।358।

दोसु वि पव्वेसु सया उववासं एय-भत्त-णिव्वियडी ।

जो कुणदि एवमाई तस्स वयं पोसहं विदियं ।359।[92]

जो श्रावक सदा दोनों पर्वों में स्नान, विलेपन, भूषण, स्त्री-संसर्ग, गंध, धूप दीपादि का त्याग करता है ; वैराग्यरूपी भूषण से भूषित होकर, उपवास या एक बार भोजन, वा निर्विकृति भोजन करता है उसके **प्रोषधोपवास** नाम का शिक्षाव्रत होता है ।358-359।

वैयावृत्य -

व्यापत्तिव्यपनोदः पदयोः संवाहनं च गुणरागात्।

वैयावृत्त्यं यावानुपग्रहोऽन्योऽपि संयमिनां।112।[93]

गुणों में अनुरागपूर्वक संयमी पुरुषों के खेद का दूर करना, पाँव दबाना तथा और भी जितना कुछ उपकार करना है, सो वैयावृत्त्य कहा जाता है।

गुणवद्दुःखोपनिपाते निरवद्येन विधिना तदपहरणं वैयावृत्त्यम्।[94]

कायचेष्टया द्रव्यांतरेण चोपासनं वैयावृत्त्यम्।[95]

गुणी पुरुषों के दुःख में आ पड़ने पर निर्दोष विधि से उसका दुःख दूर करना वैयावृत्त्य भावना है।

शरीर की चेष्टा या दूसरे द्रव्य द्वारा उपासना करना वैयावृत्त्य तप है।[96]

तेषामाचार्यादीनां व्याधिपरीषहमिथ्यात्वाद्युपनिपाते प्रासुकौषधिभक्तपानप्रतिश्रय-पीठफलकसंस्तरणादिभिर्धर्मोपकरणैस्तत्प्रतीकारः सम्यक्त्वप्रत्यवस्थापनमित्येवमादिवैयावृत्त्यम्।15।

बाह्यस्यौषधभक्त-पानादेरसंभवेऽपि स्वकायेन श्लेष्मसिंघाणकाद्यंतर्मलापकर्षणादि तदानुकूल्यानुष्ठानं च वैयावृत्यमिति कथ्यते।16।[97]

उन आचार्य आदि पर व्याधि, परीषह, मिथ्यात्व आदि का उपद्रव होने पर उनका प्रासुक औषधि, आहारपान, आश्रम, चौकी, तख्ता और सांथरा आदि धर्मोपकरणों से प्रतीकार करना तथा सम्यक्त्व मार्ग में दृढ़ करना वैयावृत्त्य है।15। औषधि आदि के अभाव में अपने हाथ से खकार, नाक आदि भीतरी मल को साफ करना और उनके अनुकूल वातावरण को बना देना आदि भी वैयावृत्त्य है।16।

व्यापृते यत्क्रियते तद्वैयावृत्त्यम्।[98]

= व्यापृत अर्थात् रोगादि से व्याकुल साधु के विषय में जो कुछ किया जाता है उसका नाम वैयावृत्त्य है।

व्यापदि यत्क्रियते तद्वैयावृत्त्यम्।[99]

= आपत्ति के समय उसके निवारणार्थ जो किया जाता है वह वैयावृत्त्य नाम का तप है।

कायपीडादुष्परिणामव्युदासार्थं कायचेष्टया द्रव्यांतरेणोपदेशेन च व्यावृत्तस्य यत्कर्म तद्वैसावृत्त्यं।[100]

शरीर की पीड़ा अथवा दुष्ट परिणामों को दूर करने के लिए शरीर की चेष्टा से, किसी औषध आदि अन्य द्रव्य से, अथवा उपदेश देकर प्रवृत्त होना अथवा कोई भी क्रिया करना वैयावृत्त्य है।

जो उवयरदि जदीणं उवसग्ग जराइ खीणकायाणं। पूयादिसु णिरवेक्खं वेज्जावच्चं तवो तस्स ।459।[101]

जो मुनि उपसर्ग से पीड़ितं हो औरु बुढ़ापे आदि के कारण जिनकी काय क्षीण हो गयी हो। जो अपनी पूजा प्रतिष्ठा की अपेक्षा न करके उन मुनियों का उपकार करता है, उसके वैयावृत्त्य तप होता है।

निश्चय लक्षण –

जो वावरइ सरूवे समदमभावम्मि सुद्ध उवजुत्तो। लोयववहारविरदो वेयावच्चं परं तस्स।[102]

विशुद्ध उपयोग से युक्त हुआ जो मुनि शमदम भाव रूप अपने आत्मस्वरूप में प्रवृत्ति करता है और लोक व्यवहार से विरक्त रहता है, उसके उत्कृष्ट वैयावृत्त्य तप होता है।

वैयावृत्त्य के पात्रों की अपेक्षा 10 भेद –

गुणधीए उवज्झाए तवस्सि सिस्से य दुब्बले।

साहुगणे कुले संघे समणुण्णे य चापदि ।390।[103]

गुणाधिक में, उपाध्यायों में तपस्वियों में, शिष्यों में, दुर्बलों में, साधुओं में, गण में, साधुओं के कुल में, चतुर्विध संघ में, मनोज्ञ में, इन दस में उपद्रव आने पर वैयावृत्त्यकरना कर्त्तव्य है।

आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्षग्लानगणकुलसंघसाधुमनोज्ञानाम्।24।[104]

आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष (शिष्य), ग्लान (रोगी), गण, कुल, संघ, साधु और मनोज्ञ इनकी वैयावृत्त्य के भेद से वैयावृत्त्य दस प्रकार है।24।[105]

वैयावृत्त्य योग्य कुछ कार्य –

सेज्जागासणिसेज्जा उवघीपडिलेहणाउवग्गहिदे। आहारो सहवायणविकिंचणुव्वत्तणा-दीसु।305। अद्धाण तेण सावयरायणदीराधेगासिवे ऊमे। वेज्जावच्चं उत्तं संगहणारक्खणोवेदं।306।[106]

शयनस्थान–बैठने का स्थान, उपकरण इनका शोधन करना, निर्दोष आहार-औषध देकर उपकार करना, स्वाध्याय अर्थात् व्याख्यान करना, अशक्त मुनि का मैला उठाना, उसे करवट दिलाना बैठाना वगैरह कार्य करना।305। थके हुए साधु के पाँव, हाथ व अंग दबाना, नदी से रुके हुए अथवा रोग पीड़ित का उपद्रव विद्या आदि से दूर करना, दुर्भिक्ष पीड़ित को सुभिक्ष देश में लाना ये सब कार्य वैयावृत्त्य कहलाते हैं।[107]

वैयावृत्त्य का प्रयोजन व फल –

गुणपरिणामो सड्ढा बच्छल्लं भत्तिपत्तलंभो य। संघाणं तवपूया अव्वोच्छित्ती समाधी य।309। आणा संजमसाखिल्लदा य दाण च अविदिगिंछा य। वेज्जावच्चस्स गुणा पभावणा कज्जपुण्णाणि।310।[108]

गुणग्रहण के परिणाम श्रद्धा, भक्ति, वात्सलय, पात्र की प्राप्ति, विच्छिन्न सम्यक्त्व आदि का पुनः संधान, तप, पूजा, तीर्थ, अव्युच्छित्ति, समाधि।309। जिनाज्ञा, संयम, सहाय, दान, निर्विचिकित्सा, प्रभावना, कार्य निर्वाहण ये वैयावृत्त्य के 18 गुण हैं।[109]

समाध्याधानविचिकित्साभावप्रवचनवात्सल्याद्यभिब्यक्त्यर्थम्।[110]

यह समाधि की प्राप्ति, विचिकित्सा का अभाव और प्रवचन वात्सल्य की अभिव्यक्ति के लिए किया जाता है।[111]

वैयावृत्त्य न करने में दोष –

अणिगूहिदबलविरिओ वेज्जावच्चं जिणोवदेसेण।

जदि ण करेदि समत्थो संतो सो होदि णिद्धम्मो ।307।

तित्थयराणाकोधो सुदधम्मविराधणा अणायारो।

अप्पापरोपवयणं च तेण णिज्जूहिदं होदि ।308।[112]

समर्थ होते हुए तथा अपने बल को न छिपाते हुए भी जिनोपदिष्ट वैयावृत्त्य जो नहीं करता है, वह धर्मभ्रष्ट है ।307। जिनाज्ञा का भंग, शास्त्र कथित धर्म का नाश, अपना साधुवर्ग का व आगम का त्याग, ऐसे महादोष वैयावृत्त्य न करने से उत्पन्न होते हैं ।308।

वेज्ज वच्चस्स गुणा जे पुव्वं विच्छरेण अक्खादा।

तेसिं फडिओ सो होइ जो उवेक्खेज्ज तं खवयं।1496।[113]

= वैयावृत्त्य के गुणों का पहले विस्तार से वर्णन किया है। जो क्षपक की उपेक्षा करता है वह उन गुणों से भ्रष्ट होता है।1496।

वैयावृत्त्य की अत्यंत प्रधानता –

एदे गुणा महल्ला वेज्जावच्चुज्जदस्स बहुया य। अप्पट्ठिदो हु जायदि सज्झायं चेव कुव्वंतो।329। आत्मप्रयोजन पर एव जायते स्वाध्यायमेव कुर्वन्। वैयावृत्त्यकरस्तु स्वं परं चोद्धरतीति मन्यते।[114]

= वैयावृत्त्य करने वाले को उपरोक्त बहुत से गुणों की प्राप्ति होती है। केवल स्वाध्याय करने वाला स्वयं की ही आत्मोन्नति कर सकता है, जब कि वैयावृत्त्य करने वाला स्वयं को व अन्य को दोनों को उन्नत बनाता है।

स्वाध्यायकारिणोऽपि विपदुपनिपाते तन्मुखप्रेक्षित्वात्।[115]

स्वाध्याय करने वाले पर यदि विपत्ति आयेगी तो उसको वैयावृत्त्य वाले के मुख की तरफ ही देखना पड़ेगा।

वैयावृत्त्य में शेष 15 भावनाओं का अंतर्भाव -

जेण सम्मत्त-णाण-अरहंत-बहुसुदभत्ति-पवयणवच्छल्लादिणा जीवो जुज्जइ वेज्जावच्चे सो वेज्जावच्चजोगो देसणविसुज्झदादि, तेण जुत्तदा वेज्जावच्चजोगजुत्तदा। ताए एवंविहाएएक्काए वि तित्थयरणामकम्मं बंधइ। एत्थ सेसकारणाणं जहासंभवेण अंतब्भावो वत्तव्वो।[116]

जिस सम्यक्त्व, ज्ञान, अरहंतभक्ति, बहुश्रुतभक्ति एवं प्रवचनवत्सलत्वादि से जीव वैयावृत्त्य में लगता है वह वैयावृत्त्ययोग अर्थात् दर्शन विशुद्धतादि गुण हैं, उनसे संयुक्त होने का नाम वैयावृत्त्ययोगयुक्तता है। इस प्रकार की उस एक ही वैयावृत्त्ययोगयुक्तता से तीर्थंकर नामकर्म बँधता है। यहाँ शेष कारणों का यथासंभव अंतर्भाव कहना चाहिए।

वैयावृत्त्य गृहस्थों को मुख्य और साधु को गौण है -

वेज्जावच्चणिमित्तं गिलाणगुरुबालवुड्ढसमणाणं ।

लोगिगजणसंभासा ण णिंदिदा वा सुहोव-जुदा ।।253।

एसा पसत्थभूदा समणाणं वा पुणो घरत्थाणं ।

चरिया परेत्ति भणिदा ताएव परं लहदि सोक्खं ।।254।[117]

एवमेष प्रशस्तचर्या.....रागसंगत्वाद्गौणः श्रमणानां, गृहिणां तु...क्रमतः परमनिर्वाणसौख्य-कारणत्वाच्च मुख्यः ।

रोगी, गुरु, बाल तथा वृद्ध श्रमणों की वैयावृत्त्य के निमित्त शुभोपयोगयुक्त लौकिकजनों के साथ की बातचीत निंदित नहीं है ।253। यह प्रशस्तभूत चर्या रागसहित होने के कारण श्रमणों को गौण होती है और गृहस्थों को क्रमशः परमनिर्वाण सौख्य का कारण होने से मुख्य है । ऐसा शास्त्रों में कहा है ।

उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत/भोगोपभोग परिमाणव्रत –

अक्षार्थानां परिसंख्यानं भोगोपभोगपरिणामं।

अर्थवतामप्यवधौ रागरतीनां तनूकृतये ।82।[118]

राग रति आदि भावों को घटाने के लिए परिग्रह परिमाण व्रतकी की हुई मर्यादा में भी प्रयोजनभूत इंद्रिय के विषयों का प्रतिदिन परिमाण कर लेना सो भोगोपभोगपरिमाण नामा गुणव्रत कहा जाता है ।82।[119]

तयोः परिमाणमुपभोगपरिभोगपरिमाणम्। ..यानवाहनाभरणादिष्वेतावदेवेष्टमतोऽन्यदनिष्टमित्यनिष्टान्निवर्तनं कर्त्तव्यं कालनियमेन यावज्जीवं वा यथाशक्तिः।[120]

इनका (भोग व उपभोग का) परिणाम करना उपभोग-परिभोगपरिमाण व्रत है।.. यान, वाहन और आभरण आदि में हमारे लिए इतना ही इष्ट है, शेष सब अनिष्ट है इस प्रकार का विचार करके कुछ काल के लिए या जीवनभर के लिए शक्त्यनुसार जो अपने लिये अनिष्ट हो उसका त्याग कर देना चाहिए।[121]

न हि असत्यभिसंधिनियमे व्रतमिति। इष्टानामपि चित्रवस्त्रविकृतवेषाभरणादीनामनुपसेव्यानां परित्यागः कार्यः यावज्जीवम्। अथ न शक्तिरस्ति कालपरिच्छेदेन वस्तु परिमाणेन च शक्त्यनुरूपं निवर्तनं कार्यम्।[122]

जो विचित्र प्रकार के वस्त्र, विकृतवेष, आभरण आदि शिष्टजनों के उपसेव्य—धारण करने लायक नहीं हैं वे अपने को अच्छे भी लगते हों तब भी उनका यावत् जीवन परित्याग कर देना चाहिए। यदि वैसी शक्ति नहीं है तो अमुक समय की मर्यादा से अमुक वस्तुओं का परिमाण करके निवृत्ति करनी चाहिए।[123]

जाणित्ता संपत्ती भोयण-तंबोल-वत्थमादीणं।

जं परिमाणं कीरदि भोउवभोयं वयं तस्स ।350।[124]

जो अपनी सामर्थ्य जानकर, तांबूल, वस्त्र आदि का परिमाण करता है, उसको भोगोपभोग परिमाण नाम का गुणव्रत होता है ।30।

भोगोपभोग व्रत के भेद –

नियमो यमश्च विहितौ द्वेधा भोगोपभोगसंहारनियमः परिमितकालो यावज्जीवं यमो ध्रियते ।87।[125]

=भोगोपभोग के त्याग में नियम और यम दो प्रकार का त्याग-विधान किया गया है। जिसमें काल की मर्यादा है वह तो नियम कहलाता है, जो जीवनपर्यंत धारण किया जाता है, वह यम है।[126]

भोगपरिसंख्यानं पंचविधं त्रसघातप्रमादबहुविधानिष्टानुपसेव्यविषयभेदात्।[127]

त्रसघात, बहुघात, प्रमाद, अनिष्ट और अनुपसेव्य रूप विषयों के भेद से भोगोपभोग परिमाण व्रत पाँच प्रकार का हो जाता है।[128]

नियम धारण करने की विधि –

भोजनवाहनशयनस्नानपवित्रांगरागकुसुमेषु।

तांबूलवसनभूषणमन्मथसंगीतगीतेषु ।88।

अद्य दिवा रजनी वा पक्षो मासस्तथार्तुरयनं वा।

इति कालपरिच्छित्त्या प्रत्याख्यानं भवेन्नियमः ।89।[129]

भोजन, सवारी, शयन, स्नान, कुंकुमादिलेपन, पुष्पमाला, तांबूल, वस्त्र, अलंकार, कामभोग, संगीत और गीत इन विषयों में आज एक दिन अथवा एक रात, एक पक्ष, एक मास तथा दो मास अथवा छह मास ऋतु, अयन इस प्रकार काल के विभाग से त्याग करना नियम है।

भोगोपभोग परिमाण व्रत के अतिचार –

सचित्तसंबंधसंमिश्राभिषवदुष्पक्वाहारः ।35।[130]

= सचित्ताहार, सचित्तसंबंधाहार, सम्मिश्राहार, अभिषवाहार और दुःपक्वाहार ये उपभोगपरिभोगपरिमाण व्रत के पाँच अतिचार हैं ।35।[131]

विषयविषतोऽनुपेक्षानुस्मृतिरतिलौल्यमतितृषानुभवौ।

भोगोपभोगपरिमाणव्यतिक्रमाः पंच कथ्यंते ।90।[132]

विषयरूपी विष की उपेक्षा नहीं करना, पूर्वकाल में भोगे हुए विषयों का स्मरण रखना, वर्तमान के विषयों में अति लालसा रखना, भविष्य में विषय प्राप्ति की तृष्णा रखना, और विषय नहीं भोगते भी विषय भोगता हूँ ऐसा अनुभव करना ये पाँच भोगोपभोग परिमाण व्रत के अतिचार हैं।

दुःपक्व आहार में क्या दोष है ? –

तस्याभ्यवहारे को दोषः। इंद्रियमदवृद्धिः स्यात्, सचित्तप्रयोगो वा वातादिप्रकोपो वा, तत्प्रतीकारविधाने स्यात् पापलेपः, अतिथयश्चैनं परिहरेयुरिति।[133]

प्रश्न—उस (दुष्पक्क व सचित्त पदार्थ का) आहार करने में क्या दोष है ? उत्तर—इनके भोजन से इंद्रियाँ मत्त हो जाती हैं। सचित्त प्रयोग से वायु आदि दोषों का प्रकोप हो सकता है, और उसका प्रतिकार करने में पाप लगता है, अतिथि उसे छोड़ भी देते हैं।[134]

भोगोपभोग परिमाण व्रती को सचित्तादि ग्रहण कैसे हो सकता है –

कथं पुनरस्य सचित्तादिषु वृत्तिः। प्रमादसंमोहाभ्यां सचित्तादिषु वृत्तिः। क्षुत्पिपासातुरत्वात् त्वरमाणस्य सचित्तादिषु अशनाय पापानायानुलेपनाय परिधानाय वा वृत्तिर्भवति।[135]

प्रश्न—इस भोगोपभोग परिमाण व्रतधारी की सचित्तादि पदार्थों में वृत्ति कैसे हो सकती है ?उत्तर—प्रमाद तथा मोह के कारण क्षुधा, तृषा आदि से पीड़ित व्यक्ति की जल्दी-जल्दी में सचित्त आदि भोजन, पान, अनुलेपन तथा परिधान आदि में प्रवृत्ति हो जाती है।

सचित्त-संबंध व सम्मिश्र में अंतर –

तेन चित्तवता द्रव्येणोपश्लिष्टः संबंध इत्याख्यायते ।3। तेन सचित्तेन द्रव्येण व्यतिकीर्णः संमिश्र इति कथ्यते ।4। त्यान्मतम्—संबंधेनाविशिष्टः संमिश्र इति। तन्न। किं कारणम्। तत्र संसर्गमात्रत्वात्। सचित्तसंबंधे हि संसर्गमात्रं विवक्षितम्, इह तु सूक्ष्मजंतुव्याकुलत्वे विभागीकरणस्याशक्यत्वात् नानाजातीयद्रव्यसमाहारः सूक्ष्मजंतुप्रायआहारः संमिश्र इष्टः।[136]

सचित्त से उपश्लिष्ट या संसर्ग को प्राप्त सचित्त-संबंध कहलाता है ।3। और उससे व्यतिकीर्ण संमिश्र कहलाता है ।4।

प्रश्न—संबंध से अवशिष्ट ही संमिश्र है। इन दोनों में अंतर ही क्या है।

उत्तर—ऐसा नहीं है, क्योंकि, संबंध में केवल संसर्ग विवक्षित है तथा संमिश्र में सूक्ष्म जंतुओं से आहार ऐसा मिला हुआ होता है जिसका विभाग न किया जा सके। नाना जातीय द्रव्यों से मिलकर बना हुआ आहार सूक्ष्म जंतुओं का स्थान होता है, उसे सम्मिश्र कहते हैं।[137]

भोगोपभोग परिमाण व्रत का महत्त्व –

भोगोपभोगहेतोः स्थावरहिंसा भूवेत्किलामीषाम्। भोगोपभोगविरहाद्भवति न लेशोऽपि हिंसायाः।158। इति यः परिमितिभोगैः संतुष्टस्त्यजति बहुतरान् भोगान्। बहुतरहिंसाविरहात्तस्याहिंसाविशिष्टा स्यात्।166।[138]

निश्चय करके इन देशव्रती श्रावकों के भोगोपभोग के हेतु से स्थावर जीवों की हिंसा होती है, किंतु उपवासधारी पुरुष के भोग उपभोग के त्याग से लेशमात्र भी हिंसा नहीं होती है।158। जो गृहस्थ इस प्रकार मर्यादारूप भोगों से तृप्त होकर अधिकतर भोगों को छोड़ देता है, उसका बहुत हिंसा के त्याग से उत्तम अहिंसाव्रत होता है, अर्थात् अहिंसा व्रत का उत्कर्ष होता है।166।

अतिथिसंविभाग व्रत –

संयममविनाशयन्नततीत्यतिथिः।अथवा नास्य तिथिरस्तीत्यतिथिः अनियतकालागमन इत्यर्थः।[139]

संयम का विनाश न हो, इस विधि से जो आता है, वह अतिथि है या जिसके आने की कोई तिथि नहीं, उसे अतिथि कहते हैं। तात्पर्य यह है कि जिसके आने का कोई काल निश्चित नहीं है, उसे अतिथि कहते हैं।

तिथिपर्वोत्सवाः सर्वे त्यक्ता येन महात्मना। अतिथिं तं विजानीयाच्छेषमभ्यागतं विदुः।[140]

जिस महात्मा ने तिथि पर्व उत्सव आदि सब का त्याग कर दिया है अर्थात् अमुक पर्व या तिथि में भोजन नहीं करना ऐसे नियम का त्याग कर दिया है, उसको अतिथि कहते हैं। शेष व्यक्तियों को अभ्यागत कहते हैं।

न विद्यते तिथिः प्रतिपदादिका यस्य सोऽतिथिः। अथवा संयमलाभार्थमतति गच्छति उद्दंडचर्यां करातीत्यतिथिर्यतिः।[141]

जिसको प्रतिपदा आदिक तिथि न हों वह अतिथि है। अथवा संयम पालनार्थ जो विहार करता है, जाता है, उद्दंडचर्या करता है, ऐसा यति अतिथि है।

अतिथिसंविभाग व्रत –

अतिथिये संविभागोऽतिथिसंविभागः। स चतुर्विधः भिक्षोपकरणौषधप्रतिश्रयभेदात्। मोक्षार्थमभ्युद्यतायातिथये संयमपरायणाय शुद्धाय शुद्धचेतसा निरवद्या भिक्षा देया। धर्मोपकरणानि च सम्यग्दर्शनाद्युपवृंहणानि दातव्यानि। औषधमपि योग्यमुपयोजनींयम्। प्रतिश्रयश्च परमधर्मश्रद्धया प्रतिपादयितव्य इति। 'च' शब्दो वक्ष्यमाणगृहस्थधर्मसमुच्चयार्थः।[142]

अतिथि के लिए विभाग करना अतिथिसंविभाग है। वह चार प्रकार का है – भिक्षा, उपकरण, औषध और प्रतिश्रय अर्थात् रहने का स्थान। जो मोक्ष के लिए बद्धकक्ष है, संयम के पालन करने में तत्पर है और शुद्ध है, उस अतिथि के लिए शुद्ध मन से निर्दोष भिक्षा देनी चाहिए। सम्यग्दर्शन आदि के बढ़ानेवाले धर्मोपकरण देने चाहिए। योग्य औषध की योजना करनी चाहिए तथा परम धर्म का श्रद्धापूर्वक निवास-स्थान भी देना चाहिए। सूत्रमें 'च' शब्द है, वह आगे कहे जानेवाले गृहस्थ धर्म के संग्रह करने के लिए दिया गया है।[143]

तिविहे पत्तह्मि सया सद्धाइ-गुणेहि संजुदो णाणी। दाणं जो देदि सयं णव-दाण-विहोहि संजुत्तो ॥360॥ सिक्खावयं च तिदियं तस्स हवे सव्वसिद्धि-सोक्खयरं। दाणं चउविहं पि य सव्वे दाणाण सारयरं ॥361॥[144]

श्रद्धा आदि गुणों से युक्त जो ज्ञानी श्रावक सदा तीन प्रकार के पात्रों को दान की नौ विधियों के साथ स्वयं दान देता है, उसके तीसरा शिक्षा व्रत होता है। यह चार प्रकार का दान सब दानों में श्रेष्ठ है और सब सुखों का व सब सिद्धियों का करनेवाला है।

व्रतमतिथिसंविभागः, पात्रविशेषाय विधिविशेषेण। द्रव्यविशेषवितरणं, दातृविशेषस्य फलविशेषाय ॥ 41 ॥[145]

जो विशेष दाता का विशेष फल के लिए, विशेष विधि के द्वारा, विशेष पात्र के लिए, विशेष द्रव्य का दान करना है वह अतिथिसंविभाग व्रत कहलाता है।

अतिथिसंविभाग व्रत के पाँच अतिचार –

सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः।[146]

1. सचित्त कमल पत्रादि में आहार रखना, 2. सचित्त से ढक देना, 3. स्वयं न देकर दूसरे को दान देने को कहकर चले जाना, 4. दान देते समय आदर भाव न रहना, 5. साधुओं के भिक्षा काल को टालकर द्वारापेक्षण करना, ये पाँच अतिथि संविभाग व्रत के अतिचार हैं।[147]

सल्लेखना शिक्षाव्रत – अतिवृद्ध या असाध्य रोगग्रस्त हो जाने पर, अथवा अप्रतिकार्य उपसर्ग आ पड़ने पर अथवा दुर्भिक्ष आदि के होने पर साधक साम्यभाव पूर्वक अंतरंग कषायों का सम्यक् प्रकार दमन करते हुए, भोजन आदि का त्याग करके, धीरे-धीरे शरीर को कृश करते हुए, इसका त्यागकर देते हैं। इसे ही सल्लेखना या समाधिमरण कहते हैं। सम्यग्दृष्टि जनों को यथार्थतः संभव होने से इसे पंडितमरण कहते हैं। शरीर के प्रति जो स्वभाव से ही उपेक्षित हैं, ऐसे श्रावक साधु को ऐसे अवसरों पर अथवा आयुपूर्ण होने पर इस ही प्रकार की वीरता से शरीर का त्याग योग्य है। इसे आत्म हत्या कहना अनभिज्ञता का सूचक है। सल्लेखनागत साधु को क्षपक कहते हैं। पीड़ाओं के प्रकर्ष की संभावना होने के कारण सल्लेखना विधि में निर्यापकों, परिचारकों, वैयावृत्ति उपदेश आदि का प्रधान स्थान है।

सल्लेखना सामान्य का लक्षण –

सम्यक्कायकषायलेखना सल्लेखना। कायस्य बाह्यस्याभ्यंतराणां च कषायाणां तत्कारणहापनक्रमेण सम्यग्लेखना सल्लेखना।[148]

अच्छे प्रकार से काय और कषाय का लेखन करना अर्थात् कृश करना सल्लेखना है। अर्थात् बाहरी शरीर का और भीतरी कषायों का, उत्तरोत्तर काय और कषाय को पुष्ट करने वाले कारणों को घटाते हुए भले प्रकार से लेखन करना अर्थात् कृश करना सल्लेखना है। [149]

दुर्भिक्ष आदि के उपस्थित होने पर धर्म के अर्थ शरीर का त्याग करना सल्लेखना है।

कदलीघात के बिना बहिरंग और अंतरंग परिग्रह का त्याग करके जीवन व मरण की आशा से रहित छूटा हुआ शरीर त्यक्त शरीर कहलाता है, जो भक्तप्रत्याख्यान आदि की अपेक्षा तीन प्रकार का है।

बाह्य व अभ्यंतर सल्लेखना निर्देश –

सल्लेहणा य दुविहा अब्भंतरिया य बाहिरा चेव।

अब्भंतरा कसायेसु बाहिरा होदि हु सरीरे।206।[150]

=सल्लेखना दो प्रकार की है–अभ्यंतर और बाह्य। तहाँ अभ्यंतर सल्लेखना तो कषायों में होती है और बाह्यसल्लेखना शरीर में। अर्थात् उपरोक्त लक्षण में कषायों को कृश करना तो अभ्यंतर सल्लेखना है और शरीर को कृश करना बाह्य सल्लेखना है।

आत्मसंस्कारानंतरं तदर्थमेव क्रोधादिकषायरहितानंतज्ञानादिगुणलक्षणपरमात्मपदार्थे स्थित्वा रागादिविकल्पानां सम्यग्लेखनं तनुकरणं भावसल्लेखना, तदर्थं कायक्लेशानुष्ठानं द्रव्यसल्लेखना, तदुभयाचरणं स सल्लेखनाकालः।[151]

आत्मसंस्कार के अनंतर उसके लिए ही क्रोधादि कषायरहित अनंतज्ञानादि गुणलक्षण परमात्मपदार्थ में स्थित होकर रागादि विकल्पों का कृश करना भाव सल्लेखना है, और उस भाव सल्लेखना के लिए कायक्लेशरूप अनुष्ठान करना अर्थात् भोजन आदि का त्याग करके शरीर को कृश करना द्रव्य सल्लेखना है। इन दोनों रूप आचरण करना सल्लेखना काल है।

सल्लेखना आत्महत्या नहीं है –

स्यान्मतमात्मवधः प्राप्नोति; स्वाभिसंधिपूर्वकायुरादिनिवृत्तेः। नैष दोषः; अप्रमत्तत्वात् । 'प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा' इत्युक्तम् । न चास्य प्रमादयोगोऽस्ति। कुतः। रागाद्यभावात् । रागद्वेषमोहाविष्टस्य हि विषशस्त्राद्युपकरणप्रयोगवशादात्मानं घ्नतः स्वघातो भवति। न सल्लेखनां प्रतिपन्नस्य रागादयः संति ततो नात्मवधदोषः।[152]

प्रश्न – चूँकि सल्लेखना में अपने अभिप्राय से आयु आदि का त्याग किया जाता है, इसलिए यह आत्मघात हुआ ? उत्तर–यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि सल्लेखना में प्रमाद का अभाव है। 'प्रमत्तयोग से प्राणों का वध करना हिंसा है' यह पहले कहा जा चुका है परंतु इसके प्रमाद नहीं है, क्योंकि, इसके रागादिक नहीं पाये जाते। राग, द्वेष और मोह से युक्त होकर जो विष और शस्त्र आदि उपकरणों का प्रयोग करके उनसे अपना घात करता है उसे आत्मघात का दोष प्राप्त होता है परंतु सल्लेखना को प्राप्त हुए जीव के रागादिक तो हैं नहीं, इसलिए इसे आत्मघात को दोष प्राप्त नहीं होता है। (कहा भी है–रागादिक का न होना ही अहिंसा है और उनकी उत्पत्ति ही हिंसा है।[153]

सल्लेखना के अतिचार –

जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबंधनिदानानि ॥37।[154]

=जीविताशंसा, मरणाशंसा, मित्रानुराग, सुखानुबंध और निदान ये सल्लेखना के पाँच अतिचार हैं ॥37।[155]

सल्लेखना का महत्त्व व फल –

भोगे अणुत्तरे भुंजिऊण तत्तो चुदा सुमाणुसे।

इड्ढिमतुलं चइत्ताचरंति जिणदेसियं धम्मं।1942।

सुक्कं लेस्समुवगदा सुक्कज्झाणेण खविदसंसारा।

सम्मुक्ककम्मकवया सविंतिं सिद्धिं धुदकिलेसा।1945।।[156]

स्वर्गों में अनुत्तर भोग भोगकर वे वहाँ से चय उत्तम मनुष्यभव में जन्म धारणकर संपूर्ण ऋद्धियों को प्राप्त करते हैं। पीछे वे जिनधर्म अर्थात् मुनि धर्म व तप आदि का पालन करते हैं।1942। शुक्ल लेश्या की प्राप्ति कर वे आराधक शुक्लध्यान से संसार का नाश करते हैं, और कर्मरूपी कवच को फोड़कर संपूर्ण क्लेशों का नाश कर मुक्त होते हैं।1945।

निःश्रेयसमभ्युदयं निस्तीरं दुस्तरं सुखांबुनिधिं।

निष्पिवति पीतधर्मा सर्वैर्दुःखैरनालीढः।130।[157]

पिया है धर्मरूपी अमृत जिसने ऐसा सल्लेखनाधारी जीव समस्त प्रकार के दुःखों से रहित होता हुआ, अपार दुस्तर और उत्कृष्ट उदय वाले मोक्षरूपी सुख के समुद्र को पान करता है।

गृहधर्ममिमं कृत्वा समाधिप्राप्तपंचतः।

प्रपद्यते सुदेवत्वं च्युत्वा च सुमनुष्यताम् ।203।[158]

इस गृहस्थ धर्म का पालनकर जो समाधिपूर्वक मरण करता है, वह उत्तम देवपर्याय को प्राप्त होता है, और वहाँ से च्युत होकर उत्तम मनुष्यत्व प्राप्त करता है।203। (पीछे आठ भवों में मुक्ति प्राप्त करता है।)

नीयंतेऽत्र कषाया हिंसाया हेतवो यतस्तनुताम् ।

सल्लेखनामपि ततः प्राहुरहिंसां प्रसिद्धयर्थम् ।179।[159]

क्योंकि इस संन्यास मरण में हिंसा के हेतुभूत कषाय क्षीणता को प्राप्त होते हैं, तिस कारण से संन्यास को भी श्रीगुरु अहिंसा की सिद्धि के लिए कहते हैं।179।[160]

इस एक में शेष 15 भावनाओं का समावेश

कधमेत्थ सेसपण्णरसण्णं संभवो ? ण, सम्मद्दंसणेण खण-लवपडिबुज्झण-लद्धिसंवेगसंपण्णत्त-साहुसमाहिसंधारण-वेज्जा-वच्चजोगजुत्तत्त-पासुअपरिच्चाग-अरहंत-बहुसुदपवयण-भत्ति-पवयण-पहावणलक्खण सुद्धिजुत्तेण विणा सीलव्वदाणमणदि चारत्तरस अणुववत्तीदो। असंखेज्जगुणाए सेडीए कम्मणिज्जरहदू वदं णाम। ण च सम्मत्तेण विणा हिंसालिय पोज्जव्बंभ अपरिग्गहविरइमेत्तेण सा गुणसेडिणिज्जरा होदि, दोहिंतो चेवुपज्जमाणकज्जस्स तत्थेक्कादो समुप्पत्तिविरोहादो। होदु णाम एदेसि संभवी, ण णाणविणयस्स। ण, छदव्व - णवपदत्थसमूह-तिहुवणविसएण अभिक्खणमभिक्खणमुवजोगविसयमापज्जमाणेण णाणविणएण विणा सीलव्वदणिबंधणसम्मत्तुप्पत्तीए अणुववत्तीदो। ण तत्थ चरणविणयाभावो वि, जहाथाम-तवावासयापरिहीणत्त-पवयणवच्छलत्तलक्खणचरण-विणएण विणा सीलव्वदणिरदिचारत्ताणुववत्तीदो। तम्हा तदियमेदं तित्थयरणामकम्मबंधस्स। कारणं।[161]

प्रश्न - इसमें शेष 15 भावनाओं की संभावना कैसे हो सकती है ?

उत्तर - यह ठीक नहीं है, क्योंकि क्षण-लव-प्रतिबुद्धता, लब्धि-संवेगसंपन्नता, साधु समाधि धारण, वैयाव्रत्ययोगयुक्तता, प्रासुक परित्याग, अरहंत भक्ति, बहुश्रुत भक्ति, प्रवचन भक्ति और प्रवचन प्रभावना लक्षण शुद्धि से युक्त सम्यग्दर्शन के बिना शील व्रतों की निरतिचारता बन नहीं सकती, दूसरी बात यह है कि जो असंख्यात गुणित श्रेणी से कर्म निर्जरा का कारण है वही व्रत है। और

सम्यग्दर्शन के बिना हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्म, और परिग्रह से विरक्त होने मात्र से वह गुणश्रेणि निर्जरा हो नहीं सकती, क्योंकि दोनों से ही उत्पन्न होने वाले कार्य की उनमें से एक के द्वारा उत्पत्ति का विरोध है।

प्रश्न – इनकी संभावना यहाँ भले ही हो, पर ज्ञान विनय की संभावना नहीं हो सकती।

उत्तर – ऐसा नहीं है, क्योंकि छह द्रव्य, नौ पदार्थों के समूह और त्रिभुवन को विषय करने वाले एवं बार-बार उपयोग विषय को प्राप्त होने वाले ज्ञान विनय के बिना शीलव्रतों के कारण भूत सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति नहीं बन सकती। शीलव्रत विषयक निरतिचारता में चारित्र विनय का भी अभाव नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि यथाशक्तितप, आवश्यकापरिहीनता और प्रवचनवत्सलता लक्षण चारित्र विनय के बिना शील व्रत विषयक निरतिचारता की उपपति ही नहीं बनती। इस कारण यह तीर्थंकर नामकर्म के बंध का तीसरा कारण है।

विशेष – तीन योग, तीन करण, चार संज्ञा, पाँच इंद्रिय, दस पृथ्वी आदिक काय, दस मुनि धर्म - इनको आपस में गुणा करने से अठारह हजार शील होते हैं ।1017। मूलाचार/1017-1020/

शील की प्रधानता

जीवदयादम सच्चं अचोरियं बंभचेरसंतोसे ।

सम्मद्दंसण णाणं तओ य सीलस्स परिवारो ।19।।[162]

= जीव दया, इंद्रिय दमन, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, तप ये सर्व शील के परिवार हैं ।19।

[1] जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष

[2] राजवार्तिक/7/3/1/535/26

[3] पंचास्तिकाय / तात्पर्यवृत्ति/43/86/1

[4] पुरुषार्थसिद्धयपाय में श्री अमृतचन्द्र सूरि

[5] **सर्वार्थसिद्धि/7/24/365/9, (राजवार्तिक/7/24/1/553/2)**

[6] **शीलपाहुड/मूल/40...**

[7] धवला 8/3,41/82/5 (परमात्मप्रकाश टीका 2/67) ।

[8] अनगारधर्मामृत/4/172

[9] **चारित्रसार/13/6**

[10] **सर्वार्थसिद्धि/6/24/338/9, (राजवार्तिक/6/24/3/529/19),) (चारित्रसार/53/2) , (भावपाहुड़ टीका/77/221/6)**

[11] **धवला 8/3,41/82/4**

[12] **हरिवंशपुराण - 45.86,[[ग्रन्थ:हरिवंश पुराण_-_सर्ग_58#163।हरिवंशपुराण - 58.163]**

[13] **महापुराण 63.322, हरिवंशपुराण - 34.134**

सर्वार्थसिद्धि/6/24/338/9

[14] **राजवार्तिक अध्याय 7/23,3/552/19**

[15] **धवला पुस्तक 8/3,41/82/6**

[16] **अमितगति सामायिक पाठ श्लोक 9**

[17] सागार धर्मामृत अधिकार 4/18

[18] तत्वार्थ सूत्र/7/25

[19] तत्वार्थ सूत्र/7/26

[20] तत्वार्थ सूत्र/7/27

[21] तत्वार्थ सूत्र/7/28

[22] तत्वार्थ सूत्र/7/29

[23] रत्नकरंड श्रावकाचार/67

[24] सागार धर्मामृत/5/1

[25] **भगवती आराधना/2081, (सर्वार्थसिद्धि/7/21/359/6); (वसुनंदी श्रावकाचार/214-216)**

[26] **रत्नकरंड श्रावकाचार/67**

[27] महा पुराण/10/165

[28] **रत्नकरंड श्रावकाचार/68 -69, (सर्वार्थसिद्धि/7/21/359/10); (राजवार्तिक/7/21/16/548/26); (सागार धर्मामृत/5/2); (कार्तिकेयानुप्रेक्षा/342)।**

[29] **वसुनंदी श्रावकाचार/214**

[30] **तत्त्वार्थसूत्र/7/30**

[31] रत्नकरंड श्रावकाचार/73

[32] **रत्नकरंड श्रावकाचार/70 -71**

[33] राजवार्तिक/7/21/17-19/548/29

[34] सर्वार्थसिद्धि/7/21/359/10, (राजवार्तिक/7/21/15-19/548); (पुरुषार्थ-सिद्ध्युपाय/उ./138); (कार्तिकेयानुप्रेक्षा/241)।

[35] **सर्वार्थसिद्धि/7/21/359/12, (राजवार्तिक/7/21/3/547/27), (पुरुषार्थ-सिद्ध्युपाय/139)**

[36] **कार्तिकेय अनुप्रेक्षा/मूल/367-368**

[37] (गुणभद्र श्रावकाचार/141)।

[38] **लाटी संहिता/6/123**

[39] जैनसिद्धांत प्रवेशिका/224

[40] **तत्त्वार्थसूत्र/7/31, (रत्नकरंड श्रावकाचार/96)**

[41] **राजवार्तिक/7/21/20/3, (चारित्रसार/16/1)**

[42] **सर्वार्थसिद्धि/7/21/359/13, (राजवार्तिक/7/21/20/549/2)**

[43] रत्नकरंड श्रावकाचार/95, (पुरुषार्थ-सिद्ध्युपाय/140)

[44] हरिवंशपुराण - 58.146 , पांडवपुराण 14.198, वीरवर्द्धमान चरित्र 18.49

[45] **रत्नकरंड श्रावकाचार श्लोक 74**

[46] सर्वार्थसिद्धि अध्याय /7/21/359, (राजवार्तिक अध्याय 7/214/547/26)।

[47] चारित्रसार पृष्ठ 16/4

[48] कार्तिकेयानुप्रेक्षा / मूल या टीका गाथा 343

[49] वसुनंदि श्रावकाचार गाथा 216, (गुणभद्र श्रावकाचार 142)।

[50] सागार धर्मामृत अधिकार 5/6

[51] रत्नकरंडश्रावकाचार श्लोक 75, (सर्वार्थसिद्धि अध्याय /7/21/360) (राजवार्तिक अध्याय 7/21, 21/549/5) (चारित्रसार पृष्ठ 16/4)।

[52] पुरुषार्थसिद्ध्युपाय श्लोक 142

[53] चारित्रसार पृष्ठ 16/5

[54] रत्नकरंडश्रावकाचार श्लोक 76

[55] (सर्वार्थसिद्धि अध्याय 7/21/60) राजवार्तिक अध्याय 7/21/549/7

[56] कार्तिकेयानुप्रेक्षा / मूल या टीका गाथा 345

[57] सागार धर्मामृत अधिकार 5/7

[58] रत्नकरंडश्रावकाचार श्लोक 78

[59] सर्वार्थसिद्धि अध्याय 7/21/360, (राजवार्तिक अध्याय 7/21/21/549/7) (चारित्रसार पृष्ठ 16/5) (पुरुषार्थसिद्ध्युपाय श्लोक 141)

[60] चारित्रसार पृष्ठ 171/3

[61] कार्तिकेयानुप्रेक्षा / मूल या टीका गाथा 344

[62] द्रव्यसंग्रह / मूल या टीका गाथा 22/66/9, (प्रवचनसार / तात्पर्यवृत्ति टीका / गाथा 158/219)

[63] रत्नकरंड श्रावकाचार श्लोक 80, (कार्तिकेयानुप्रेक्षा / मूल या टीका गाथा 346)।

[64] सर्वार्थसिद्धि अध्याय /7/21/360, (राजवार्तिक अध्याय 7/21,21/549/14) (चारित्रसार पृष्ठ 17/2)।

[65]

[66] सागार धर्मामृत अधिकार 5/10

[67] रत्नकरंडश्रावकाचार श्लोक 77

[68] सर्वार्थसिद्धि अध्याय /7/21/360, (राजवार्तिक अध्याय 7/21, 21/549/16) (चारित्रसार पृष्ठ 17/3)।

[69] पुरुषार्थसिद्ध्युपाय श्लोक 144

[70] कार्तिकेयानुप्रेक्षा / मूल या टीका गाथा 347

[71] सागार धर्मामृत अधिकार 5/8

[72] रत्नकरंडश्रावकाचार श्लोक 79

[73] सर्वार्थसिद्धि अध्याय /7/21/360, (राजवार्तिक अध्याय 7/21,21/549/17) (चारित्रसार पृष्ठ 17/4)।

[74] पुरुषार्थसिद्ध्युपाय श्लोक 145

[75] कार्तिकेयानुप्रेक्षा / मूल या टीका गाथा 348

[76] सागार धर्मामृत अधिकार 5/9

[77] तत्त्वार्थसूत्र अध्याय 7/32

[78] राजवार्तिक अध्याय 7/32,6-7/556/29

[79] राजवार्तिक अध्याय 7/21,22/549/19

[80] पुरुषार्थसिद्ध्युपाय श्लोक 147

[81] महापुराण 10.166, हरिवंशपुराण - 2.134,हरिवंशपुराण - 18.45-47

[82] भगवती आराधना/2082-2083

[83] (सर्वार्थसिद्धि/7/21,22/359,363/7,1)।

[84] रत्नकरंड श्रावकाचार/91

[85] चारितपाहुड़/ मूल /26

[86] वसुनंदी श्रावकाचार/217-219,270

[87] पद्मनन्दि पंचविंशतिका/6/8

[88] रत्नकरंड श्रावकाचार/97 –98, (चारित्रसार/19/3); (सागार धर्मामृत/5/28)।

[89] सर्वार्थसिद्धि/7/1/343/6

[90] **रत्नकरंड श्रावकाचार/ मू./109**

[91] **सर्वार्थसिद्धि/7/21/361/3, (राजवार्तिक/7/21/8/548/9); (सागार धर्मामृत/5/34) ।**

[92] **कार्तिकेयानुप्रेक्षा/358–359**

[93] रत्नकरंड श्रावकाचार/112

[94] **सर्वार्थसिद्धि/6/24/339/3**

[95] **सर्वार्थसिद्धि/9/20/439/7, (राजवार्तिक/6/24/9/530/4); (चारित्रसार/55/1); (तत्त्वसार/7/28); (भावपाहुड़ टीका/77/221/9)।**

[96] **(राजवार्तिक/9/24/2/623/9)।**

[97] राजवार्तिक/9/24/15-16/623/31, (चारित्रसार/152/1)।

[98] धवला 8/3, 41/88/8

[99] **धवला 13/5, 4, 26/63/6**

[100] चारित्रसार/150/3, (अनगारधर्मामृत/7/78/711)।

[101] **कार्तिकेयानुप्रेक्षा/459**

[102] **कार्तिकेयानुप्रेक्षा/460**

[103] **मूलाचार/आचारवृत्ति/390**

[104] तत्वार्थसूत्र/9/24

[105] (धवला 13/5, 4, 26/63/6); (चारित्रसार/150/3); (भावपाहुड़ टीका/78/224/19)।

[106] **भगवती आराधना/305-306/519**

[107] **(मूलाचार/आचारवृत्ति/391-392); (वसुनंदी श्रावकाचार/337-340); (और भी देखें वैयावृत्त्य - 1); (और भी देखें सल्लेखना - 5)।**

[108] **भगवती आराधना/309-310/523**

[109] (भगवती आराधना 324-328)।

[110] **सर्वार्थसिद्धि/9/24/442/11**

[111] (राजवार्तिक/9/24/17/ 624/1); (चारित्रसार/152/4)।

[112] **भगवती आराधना/307-308/521**

[113] भगवती आराधना/1496/1393

[114] **भगवती आराधना व विजयोदया टीका/329/541**

[115] भगवती आराधना/मूलारा, टीका/329/542/7

[116] धवला 8/3, 41/88/8

[117] **प्रवचनसार / तत्त्वप्रदीपिका/254**

[118] **रत्नकरंड श्रावकाचार/82 ,84**

[119] **(सागार धर्मामृत/5/13)।**

[120] **सर्वार्थसिद्धि/7/21/361/9**

[121] **(राजवार्तिक/7/21/10/548/14;27/550/6); (चारित्रसार/24/1); (पुरुषार्थ-सिद्ध्युपाय/165)**

[122] **राजवार्तिक/7/21/27/550/7**

[123] **(चारित्रसार/24/1)।**

[124] **कार्तिकेयानुप्रेक्षा/350**

[125] **रत्नकरंड श्रावकाचार/87**

[126] (सागार धर्मामृत/5/14)।

[127] राजवार्तिक/7/21/27/550/1

[128] (चारित्रसार/23/3); (सागार धर्मामृत/5/15)।

[129] रत्नकरंड श्रावकाचार/88-89

[130] तत्त्वार्थसूत्र/7/35

[131] (सागार धर्मामृत/5/20); (चारित्रसार/25/1)।

[132] रत्नकरंड श्रावकाचार/90

[133] राजवार्तिक/7/35/6/558/16

[134] (चारित्रसार/25/4)।

[135] राजवार्तिक/7/35/4/558/11

[136] राजवार्तिक/7/35/2-4/558/4

[137] (चारित्रसार/25/2)।

[138] पुरुषार्थ-सिद्ध्युपाय/158, 166

[139] सर्वार्थसिद्धि अध्याय /7/21/362

[140] सागार धर्मामृत अधिकार 5/42 में उद्धृत

[141] चारित्तपाहुड़ / मूल या टीका गाथा 25/45

[142] सर्वार्थसिद्धि अध्याय /7/21/362

[143] (राजवार्तिक अध्याय 7/21, 12/548/18) (राजवार्तिक अध्याय 7/21 28/550/10)।

[144] कार्तिकेयानुप्रेक्षा / मूल या टीका गाथा 360-361)।

[145] सागार धर्मामृत अधिकार 5/41

[146] तत्त्वार्थसूत्र अध्याय 7/36

[147] (रत्नकरंडश्रावकाचार श्लोक 121)

[148] सर्वार्थसिद्धि/7/22/363/1

[149] (सर्वार्थसिद्धि/7/22/3/550/23); (भगवती आराधना / विजयोदया टीका/157/369/12) ।

[150] भगवती आराधना/206/423

[151] पंचास्तिकाय / तात्पर्यवृत्ति/173/253/17

[152] सर्वार्थसिद्धि/7/22/363/5

[153] (राजवार्तिक/7/22/6-7/550/33); (पुरुषार्थ-सिद्‌ध्युपाय/177-178); (सागार धर्मामृत/8/8)

[154] तत्त्वार्थसूत्र/7/37

[155] (रत्नकरंड श्रावकाचार/129); (चारित्रसार/49/3); (सागार धर्मामृत/8/46)

[156] भगवती आराधना/1942-1945

[157] रत्नकरंड श्रावकाचार/130

[158] पद्मपुराण/14/203

[159] पुरुषार्थ-सिद्‌ध्युपाय/179

[160] भगवती आराधना/अ.ग./2248-2279

[161] धवला 8/3,41/82/8

[162] शीलपाहुड़/ मूल/19